ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

पुस्तक संस्कृति

वर्ष-9 • अंक-3 • मई-जून 2024 • मूल्य ₹40.00

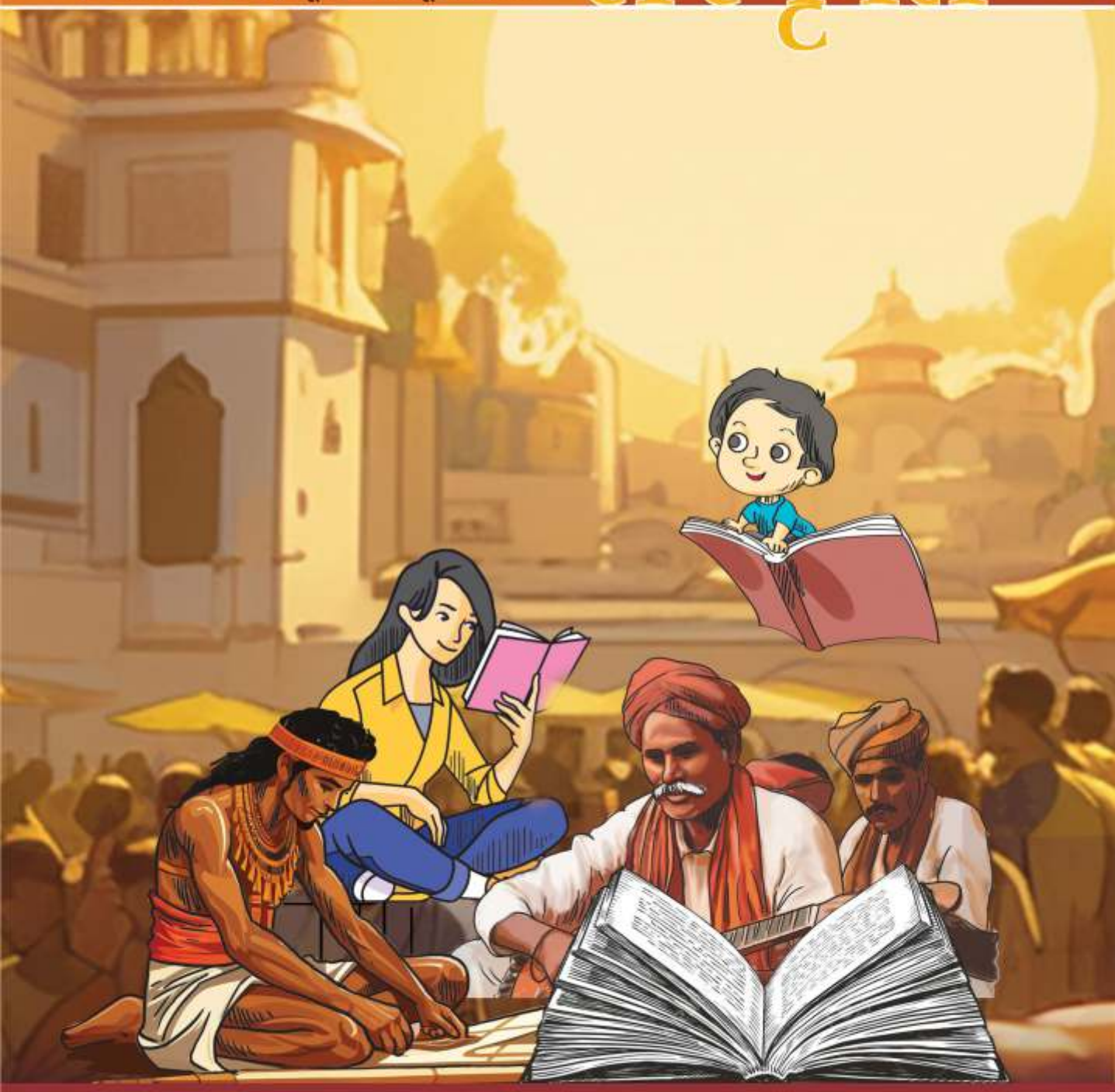

• बाल साहित्य और बालक • स्वाधीनता की लड़ाई में हरिद्वार • गौरा देवी की पराक्रम कथा
• लोकगीतों के सामाजिक संदर्भ • वृद्धावस्था–विमर्श के अग्रदूत : भिखारी ठाकुर • मेस अयनाक : भारत को पुकारते अवशेष

सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ प्रमाणित आरएंडडी प्रयोगशाला)

राजभाषा गृह पत्रिका "सड़क दर्पण"

"राजभाषा हिंदी का प्रचार एवं जन-मानस में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार"

- ❖ वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेख
- ❖ जनमानस के लिए लोक रूचि के विषय
- ❖ संस्थान की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी
- ❖ संस्थान के अनुसंधान और विकास (आरएंडडी) संबंधित जानकारी
- ❖ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध पहलु
- ❖ हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति
- ❖ समसामयिक जानकारी

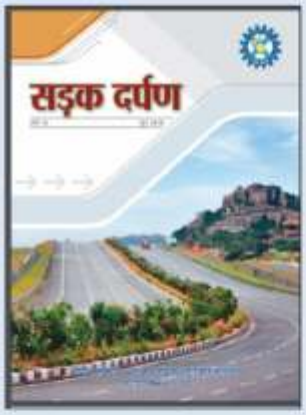

संपर्क -

संपादक, 'सड़क दर्पण'
राजभाषा अनुभाग, सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान
दिल्ली-मथुरा मार्ग, डाकघर सीआरआरआई, नई दिल्ली- 110025
दूरभाष : 26929175, 26831760, 26832325, 26832427/165
ई-पत्रिका का लिंक : **https://www.crridom.gov.in/content/sadak-darpan-hindi-magazine**

प्रधान संपादक
प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
अमित कुमार सिंह

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
मनीष वर्मा

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेलः editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और सालासर इमेजिंग सिस्टम्स, ए-97, सेक्टर-58, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-9; अंक-3; मई-जून, 2024

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे* — 2

आलेख — **विश्व में संचारक के रूप में रवींद्रनाथ टैगोर**—*शानु झा* — 3

लेख — **बाल साहित्य और बालक**—*डॉ. सत्यनारायण सत्य* — 6

इतिहास — **स्वाधीनता की लड़ाई में हरिद्वार**—*डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'* — 8

इतिहास — **गौरा देवी की पराक्रम कथा**—*मोहन प्रसाद डिमरी* — 11

लेख — **लोकगीतों के सामाजिक संदर्भ**—*राजेन्द्र परदेसी* — 15

आलेख — **वृद्धावस्था-विमर्श के अग्रदूत : भिखारी ठाकुर**—*डॉ. संतोष कुमार* — 17

समाज — **राजा राममोहन राय : नवजागरण के प्राणपुरुष**
—*डॉ. नम्रता कोठारी* — 21

इतिहास — **मेस अयनाक : भारत को पुकारते अवशेष**—*कादम्बरी मेहरा* — 24

विज्ञान — **विविधताओं का गागर : हमारा हिंद महासागर**—*डॉ. शुभ्रता मिश्रा* — 28

शब्द ज्ञान — **आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32

इतिहास — **रानी का बलिदान, युगों तक रहेगा याद**
—*डॉ. ऋषिमोहन श्रीवास्तव* — 34

इतिहास — **उलगुलान के नायक : बिरसा मुंडा**—*डॉ. शैलेश कुमार मिश्र* — 36

विज्ञान — **राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस**—*प्रवीण शर्मा* — 38

पत्रकारिता — **ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय का डिजिटलीकरण**—*कृपाशंकर चौबे* — 40

साहित्य — **भ्रमर : शताब्दी स्मरण**—*अजय कुमार शर्मा* — 43

पुस्तक समीक्षा — 47

साहित्यिक गतिविधियाँ — 61

पुस्तकें मिलीं — 63

नववर्ष : जीवन के पुनर्नवा होने का उत्सव

किसी राष्ट्र की पहचान प्रायः उसकी संस्कृति से होती है। विश्व के सभी राष्ट्र अपनी-अपनी संस्कृति को मानते हुए अपने विकास एवं उन्नति में संलग्न रहते हैं। दुख की बात है कि हमारे समृद्ध सांस्कृतिक राष्ट्र पर प्रायः एक हजार वर्षों तक के विदेशी शासन ने हमें मानसिक तौर पर कमजोर और गुलाम बना दिया और हम अपनी ही संस्कृति से विमुख होते चले गए। किंतु स्वतंत्रता के 75 वर्षों बाद आज बदली स्थिति में देश की मानसिकता भी बदली है और अब भारत के लोग अपनी संस्कृति और पर्व-त्योहार की ओर लौटने लगे हैं। हम अपने भारतीय संवत को समझने और उन पर गर्व करने लगे हैं। हमारे यहाँ दो कैलेंडर हैं, जो रोमन कैलेंडर से प्राचीन हैं। सद्यःसमाप्त मार्च मास में हम हिंदू नववर्ष विक्रमी संवत 2081 (चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा) में प्रवेश कर गए हैं, जबकि शक संवत 1946 का आरंभ हुआ है।

हमारे यहाँ पारंपरिक भारतीय नववर्ष अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग रूपों में मनाया जाता है। असम में इसे 'बिहू' कहते हैं, आंध्र में 'उगादि' या 'युगादि', महाराष्ट्र में 'गुड़ीपड़वा', पंजाब में 'बैसाखी', तमिल में 'पुथंडू', केरल में 'विशु', कश्मीर में 'नवरेह' तथा बंगाल में 'पोइला बैसाख' आदि। यह गुरु अंगददेव का प्रगटोत्सव भी है, जो सिख परंपरा के द्वितीय गुरु का जन्मदिवस भी है। पौराणिक कथा के अनुसार, भगवान राम के विजयोत्सव के रूप में चैत्र प्रतिपदा के दिन अयोध्यावासियों ने घर-घर धर्मध्वज फहराया था, इसका स्मरण भी इस दिवस को किया जाता है। यह गौर करने की बात है कि हमारी परंपरा में नववर्ष ऋतु में हरियाली आने से जुड़ा हुआ है। पेड़ जब अपने पुराने पत्तों को त्याग कर नए पत्तों को ओढ़ता-पहनता है तब हमारे यहाँ नए साल की शुरुआत होती है। वस्तुतः, जीवन में नएपन से जुड़ा है हमारा पारंपरिक नया वर्ष। नया साल यानी चैत्र नवरात्रि की प्रतिपदा। हमारे ग्रंथों में हिंदू नववर्ष को एक समृद्ध, उत्साहित और पुनर्जीवन का संकेत माना गया है। इसे नए उत्साह और ऊर्जा के साथ मनाया जाता है। कहते हैं कि सृष्टि का निर्माण इसी दिवस को हुआ था। नए संवत्सर के प्रारंभ होने का भी यह प्रथम दिवस है। चैत्र नवरात्रि की प्रतिपदा तिथि से नौ दिनों तक देवी दुर्गा की उपासना की जाती है, मतलब शक्ति की आराधना का उत्सव भी है यह नया साल। नवमी तिथि को भगवान राम का जन्मोत्सव होता है। वस्तुतः, हमारी परंपरा में नया वर्ष जीवन के पुनर्नवा होने का उत्सव है। असम में नववर्ष की शुरुआत फसलों की कटाई से होती है। नृत्य-संगीत और दावतों से लोग नए वर्ष का स्वागत करते हैं। हमारी परंपरा में कोई भी पर्व, त्योहार, उत्सव प्रायः सामासिक प्रेम, सौहार्द्र, मेल-मिलाप और भाईचारा का अवसर भी बन जाता है। जाति-पाँति के बंधन टूट जाते हैं और सारा राष्ट्र एक सूत्र में बँधा प्रतीत होने लगता है। यही सामासिक रीति कहलाती है। हम सदा से एक 'राष्ट्र' रहे हैं और आज भी राष्ट्र के रूप में अविचलित खड़े हैं। औपनिवेशिक शासन के द्वारा या उनकी गलतियों/दुर्नीतियों के कारण भले ही वृहत्तर भारत की अखंडता अक्षुण्ण नहीं रह पाई, किंतु आज जिस भारत में हम रहते हैं, वह कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से किबिथु तक एक है, अखंड है। हमारे पर्व-त्योहार, हमारे रीति-रिवाज, हमारी परंपरा आदि ने इस देश की एकता-अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने में महती भूमिका निभाई है। वेद मंत्रों की ध्वनियाँ कश्मीर से निःसृत होती हैं तो कन्याकुमारी के विवेकानंद स्मारक तक उसकी अनुगूँज सुनाई पड़ती है। असम के 'बिहू' से सारा देश महकता है और केरल के 'ओणम' से भी यह देश सुवासित होता है। संस्कृत के श्लोक और हिंदी की ध्वनियों से इस देश की चारों दिशाएँ गुंजायमान होती हैं। होली के रंग और दिवाली की रोशनी से यह सारा राष्ट्र रंगीन और रौशन होता है।

कहने का अर्थ है कि खान-पान, रहन-सहन, बोली-भाषा, जात-संप्रदाय आदि में विभिन्नताओं के बावजूद, भारत राष्ट्र के रूप में एक है, अखंड है, तथा सामासिक ऐक्य और सौहार्द्र को जीता हुआ पूरे विश्व को यह संदेश देने का नैतिक अधिकार रखता है कि हम तमाम वैभिन्न्य के बावजूद, थोड़े-बहुत अलग-अलग जीवन-शैली जीते हुए भी एक साथ प्रेम और सद्भाव से रह सकते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में यही संदेश देता है।

(प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

विश्व में संचारक के रूप में रवींद्रनाथ टैगोर

रवींद्रनाथ टैगोर एक ऐसे भारतीय संचारक थे, जिन्होंने मानवता को सबसे ऊपर रखा। भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने विश्व में सभी को मनुष्यता का पाठ पढ़ाया। उनका कहना था कि इस दुनिया में इंसानियत से ज्यादा मूल्यवान दूसरा कुछ भी नहीं है। उन्होंने कहा था कि जब तक वो जिंदा रहेंगे, मानवता के ऊपर देशभक्ति की जीत कभी नहीं होने देंगे। वे जानते थे कि क्रांति तोपों और बंदूकों से नहीं, बल्कि विचार में परिवर्तन लाने से होती है। वे 'विश्वकवि' के रूप में प्रख्यात हैं। टैगोर ने साहित्य की सभी विधाओं में लिखा, लेकिन उनका कहना था कि उन्हें एक कवि के रूप में पहचाना जाए, यह उनके लिए खुशी की बात होगी। उनकी कविताएँ मानवता का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे न केवल एक महान कवि थे, जिन्हें उनकी रचना 'गीतांजलि' के लिए 1913 में प्रतिष्ठित 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था, बल्कि एक मूल विचारक भी थे, जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किए। वे सामाजिक सुधार, एकता, सद्भाव और सहिष्णुता के विचारों को बढ़ावा देते थे। डब्ल्यू.बी. यीट्स ने रवींद्रनाथ टैगोर को 'आधुनिक भारत का एक उत्कृष्ट एवं रचनात्मक कलाकार' कहा था। वे एक कवि, उपन्यासकार और चित्रकार थे, जिन्होंने पश्चिम में भारतीय संस्कृति को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से पेश किया। वे बहुभाषी थे।

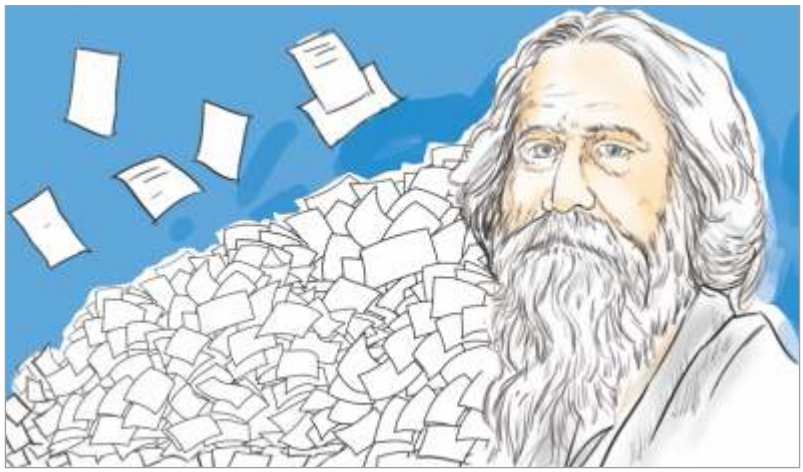

उनके घर का कलात्मक माहौल, प्रकृति की सुंदरता और उनके पिता का सदाचारी चरित्र अन्य शुरुआती प्रभाव हैं, जिन्होंने टैगोर के साहित्यिक जीवन को आकार दिया। भले ही उन्हें अलग-अलग स्कूलों में भर्ती कराया गया, लेकिन प्रकृति ने उन्हें सर्वोत्तम शिक्षा प्रदान की। अपने लेखन में वे कहते हैं, 'लगभग बचपन से ही मुझे प्रकृति की सुंदरता, पेड़ों और बादलों के साथ साहचर्य की एक अंतरंग भावना और हवा में मौसमों के संगीतमय स्पर्श के साथ तालमेल महसूस होता था।' उनके लेखन में प्रकृति हमेशा प्रमुख विषय रही।

सन् 1901 में टैगोर ने 'ब्रह्मचर्य आश्रम मॉडल' के आधार पर एक विद्यालय की स्थापना की। यही विद्यालय आगे चलकर 'विश्वभारती विश्वविद्यालय' के रूप में विकसित हुआ, जिसे साल 2023 में यूनेस्को द्वारा भारत के 41वें विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता दी गई है। शांति निकेतन को मानवीय मूल्यों, वास्तुकला, कला, नगर नियोजन और परिदृश्य डिज़ाइन में इसके महत्व पर बल देते हुए इस सूची में शामिल किया गया है। टैगोर ने इस विद्यालय में घरेलू उद्योग, ग्राम स्वायत्त शासन, सहकारिता, प्रारंभिक एवं प्रौढ़ शिक्षा का विकास, ग्रामोद्धार, प्रयोगशाला, पुस्तकालय आदि को विकसित करने पर जोर दिया, जिससे आध्यात्मिक अनुभूति हो।

शानु झा

जन्म : दरभंगा, बिहार

शिक्षा : जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. शोधार्थी हैं। अर्थशास्त्र में बी.ए. किया है।

संपर्क : मोबाइल– 6299151314

ईमेल– shanurandhir98@gmail.com

टैगोर की कविताएँ उनके मूल्य और सिद्धांत का संचार करती हैं। 'गीतांजलि' कविताओं का एक संग्रह है, जो भगवान और मानव-आत्मा के बीच संबंधों की व्याख्या करता है। 'व्हेयर द माइंड इज विदाउट फ़िअर' कविता एक ऐसे विश्व के निर्माण के लिए आह्वान करती है, जहाँ लोग भय, पूर्वाग्रह और संकीर्णता से मुक्त हों। 'द काबुलीवाला' एक मार्मिक कहानी-कविता है, जो एक गरीब अफगान आदमी की कहानी बताती है, जो एक छोटी लड़की से दोस्ती करता है और अपनी कहानी सुनाकर उसे खुशी और सुकून देता है। 'द गार्डेनर' कविताओं का संग्रह है, जो प्रेम, प्रकृति और

आध्यात्मिकता के विषयों का वर्णन करता है। 'द होम एंड द वर्ल्ड' कविता रिश्तों की जटिलताओं और उन चुनौतियों पर प्रकाश डालती है, जो तब उत्पन्न होती हैं, जब पारंपरिक मूल्य आधुनिक विचारों से टकराते हैं। 'द चाइल्ड एंजल' कविता बचपन की मासूमियत और सच्चेपन के लिए एक सुंदर और कल्पनाशील श्रद्धांजलि है। 'द फ्यूजिटिव' की कई कविताएँ रवींद्रनाथ टैगोर की व्यक्तिगत कहानियाँ हैं, जो बंगाली ग्रामीण इलाकों में उनकी यात्राओं, उनकी बेटी के साथ उनकी प्यार भरी बातों और प्रकृति तथा भगवान के प्रति उनके प्रेम को दर्शाती हैं। 'द सनसेट ऑफ द सेंचुरी' कविता 20वीं सदी की शुरुआत के उथल-पुथल भरे समय और बेहतर भविष्य के लिए संघर्ष को दर्शाती है। 'द लास्ट बार्गेन' कविता मृत्यु के विषय और मृत्यु की अनिवार्यता का विवेचन करती है। 'द गिफ्ट' कविता प्रेम की शक्ति के बारे में है, जिसमें किसी उपहार की अपेक्षा किए बिना स्वतंत्र रूप से प्रेम देने के महत्व के बारे में है।

टैगोर द्वारा लगभग 2,230 गीत रचित हैं, जो हिंदी और बाँग्ला में 'रवींद्र संगीत' और अंग्रेजी में 'टैगोर सॉन्ग्स' के नाम से प्रसिद्ध हैं। धन गोपाल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'कास्ट एंड आउटकास्ट' में कहा था, 'इन गीतों ने सौंदर्यबोध की लौकिकता को पार कर लिया है और मानवीय भावनाओं की सभी श्रेणियों और वर्गों को व्यक्त करते हैं। कवि ने छोटे या बड़े, अमीर या गरीब, सभी को एक आवाज दी। चाहे वह गंगा का केवट हो या जमींदार, सभी को टैगोर के गीतों में अपने भावनात्मक क्लेश और पीड़ा के लिए अभिव्यक्ति मिलती है।' रवींद्र संगीत के अंतर्निहित सौंदर्य और गहराई ने सत्यजीत रे, ऋत्विक घटक, मृणाल सेन, नितिन बोस, तपन सिन्हा और कुमार शाहनी सहित अनेक फिल्म निर्माताओं को अपनी फिल्मों में इन गीतों के उपयोग के लिए प्रेरित किया। एक सिनेमाई स्थिति की मनःस्थिति को पकड़ने और रिश्तों के एक नाजुक पारस्परिक प्रभाव को प्रकट करने के लिए ब्रिटिश, यूरोपीय और ऑस्ट्रेलियाई फिल्मों में भी रवींद्र संगीत का इस्तेमाल किया जाता है।

टैगोर ने राष्ट्रवाद की पश्चिमी या यूरोप-केंद्रित अवधारणा की आलोचना की, जो राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के लालच और अंधराष्ट्रीयता के लिए थी। राष्ट्रवाद की आलोचना उन्हें विश्वबंधुत्व की अवधारणा के निकट लाती है, जिसका अर्थ है कि सभी लोगों को एक समान आदर और विचार का अधिकार है, चाहे उनकी नागरिकता कुछ भी हो। हालाँकि, टैगोर की विश्वबंधुत्व की अवधारणा भी अद्वितीय है और यह विश्वबंधुत्व की पारंपरिक समझ से अलग है। उनकी रचना गीतांजलि, अपने आध्यात्मिक सार्वभौमिकता के कारण, एक गहन विश्वबंधुत्वतावादी रचना है।

टैगोर का विश्वबंधुत्ववाद सहयोग, सह-अस्तित्व, मानवता और आध्यात्मिक सार्वभौमिकता के मूल्यों से जुड़ा हुआ है। उनका विश्वबंधुत्ववाद सीमाओं से परे है और व्यापक रूप से मानवता के लिए है। उनका मानना था कि नागरिकता की अवधारणा एक मानवतावादी आदर्श पर आधारित होनी चाहिए। तनिका सरकार ने अपने लेख में तर्क दिया कि टैगोर की रचना 'गोरा' (1909) में सहयोग, सह-अस्तित्व और मानवता व्यापक रूप से परिलक्षित होते हैं। टैगोर का 'गोरा' उस जातीयता पर विजय प्राप्त करता है, जिसके कारण इस प्रकार की विकृति हुई, लेकिन इसमें वह विशेष रूप से, सार्वभौमिक देशभक्ति के बहुत करीब आता है, जो दुनिया के सभी असहाय लोगों के लिए प्यार में घुल जाती है और भारतीय देशभक्त होने का एक नया तरीका पेश करती है।

टैगोर ने सहयोग, सह-अस्तित्व और मानवता को इतना महत्व दिया कि राष्ट्रवाद की निंदा करते हुए भी वह ज्ञानोदय के बाद से यूरोपीय सभ्यता में निहित मानवतावादी मूल्यों का खंडन नहीं करते। टैगोर ने उस यूरोपीय मानवतावादी परंपरा के प्रति अपना सम्मान बनाए रखा। हालाँकि, उन्होंने 20वीं शताब्दी में राष्ट्रवादी साम्राज्यवाद के रूप में इसके पतन पर खेद प्रकट किया। अपनी मानवतावादी चिंतन के आधार पर टैगोर ने तर्क दिया कि आधुनिक भारत का राष्ट्रवाद का दावा मौलिक रूप से दोषपूर्ण था, क्योंकि भारत उन एकीकृत भावनाओं को बनाए रखने में सफल नहीं हो सका, जिन्होंने सदियों से विविध लोगों को एक साथ बनाए रखा था और उस भावना का मुकाबला करने के लिए धर्मों और जाति विभाजन के बीच संघर्ष की अनुमति दी थी। टैगोर का विश्वबंधुत्ववाद, मानवतावादी मूल्यों

को राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय स्तर तक विस्तारित करना चाहता था, इसलिए उन्होंने सार्वभौमिक मानवतावाद पर जोर दिया। टैगोर के ऐसे विचार के कारण ही जवाहरलाल नेहरू ने भी उन्हें 'भारत का महान मानवतावादी' कहा था।

"टैगोर पूर्व और पश्चिम के आदर्शों को सामंजस्य में लाना चाहते थे और भारतीय राष्ट्रवाद के आधारों को व्यापक बनाना चाहते थे। उन्होंने न केवल विश्वास किया, बल्कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग के लिए भी काम किया तथा भारत के संदेश को अन्य देशों तक पहुँचाया और उनके संदेश को अपने लोगों तक पहुँचाया। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "उनकी संपूर्ण अंतरराष्ट्रीयतावाद के बावजूद उनके पैर हमेशा भारत की धरती से मजबूती से जुड़े रहे और वे उपनिषदों के ज्ञान को कभी नहीं भूले।"

टैगोर पूर्व और पश्चिम के आदर्शों को सामंजस्य में लाना चाहते थे और भारतीय राष्ट्रवाद के आधारों को व्यापक बनाना चाहते थे। उन्होंने न केवल विश्वास किया, बल्कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग के लिए भी काम किया तथा भारत के संदेश को अन्य देशों तक पहुँचाया और उनके संदेश को अपने लोगों तक पहुँचाया। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "उनकी संपूर्ण अंतरराष्ट्रीयतावाद के बावजूद उनके पैर हमेशा भारत की धरती से मजबूती से जुड़े रहे और वे उपनिषदों के ज्ञान को कभी नहीं भूले।"

उन्होंने अपने संपूर्ण लेखन में जातीय और धार्मिक एकता पर जोर दिया। उनका विचार था कि चेतना की ऐसी एकता और बहुलता केवल लोगों की उचित शिक्षा, आधुनिकीकरण के माध्यम से गरीबी उन्मूलन तथा विचार और कल्पना की स्वतंत्रता के संवर्धन से प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने कहा, "सत्य को ग्रहण करने के लिए मन की स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है।"

हालाँकि, टैगोर ने राष्ट्रवाद के एक संकीर्ण और आक्रामक रूप की आलोचना की, पर वे एक अत्यधिक देशभक्त कवि थे, यह उनके द्वारा लिखे गए कई देशभक्ति गीतों और कविताओं में स्पष्ट है। हालाँकि, उन्होंने कभी भी देशभक्ति को आत्मा, विवेक और मानवता के प्रति प्रेम से ऊपर नहीं रखा। 'देशभक्ति' एक भावनात्मक अभिव्यक्ति, बंधन या निवेश है; यह एक भावना है, जबकि 'राष्ट्रवाद' एक विचारधारा है।

प्रसिद्ध विद्वान आशीष नंदी ने रेखांकित किया है कि विडंबना यह है कि टैगोर पहले से ही भारत के अनौपचारिक राष्ट्रीय कवि थे। उन्होंने न केवल सैकड़ों देशभक्ति गीत लिखे थे, बल्कि ये गीत भारत के स्वतंत्रता संग्राम में कई प्रतिभागियों के प्रेरणास्रोत रहे। उनके अनुसार, "टैगोर एक देशभक्त थे, लेकिन राष्ट्रवादी नहीं थे। वे स्पष्ट रूप से राष्ट्रवाद से देशभक्ति को अलग करने की माँग कर रहे थे, ताकि एक बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक आधार तैयार किया जा सके, जो एक राजनीतिक समुदाय की 'प्राकृतिक' क्षेत्रीयता को, यूरोपीय शैली के राष्ट्रवाद से बचने की अनुमति दे सके। टैगोर यूरोप के भीतर और दक्षिणी गोलार्ध में यूरोपीय राष्ट्रवाद के अभिलेखों से परिचित थे और उन्होंने उस तबाही का पूर्वाभास किया था, जिसकी ओर यूरोपीय राष्ट्रवाद, यूरोप और दुनिया को आगे बढ़ा रहा था।"

अमेरिकी दार्शनिक मार्था सी. नुस्बाम ने अपने प्रभावशाली निबंध 'देशभक्ति और विश्वबंधुत्व' (1996) में टैगोर के उपन्यास 'घरे-बाइरे' का जिक्र किया, जिसमें राष्ट्र के प्रति उग्रवादी निष्ठा के विपरीत, मानवता के समुदाय के लिए नैतिक रूप से बेहतरी के प्रति वफादारी है। नुस्बाम ने टैगोर को नैतिक तार्किकता के एक हिमायती के रूप में चित्रित किया है। उनकी व्याख्या में, टैगोर एक विश्वबंधुत्व दृष्टि के महान समर्थक हैं। नुस्बाम और अन्य ने टैगोर को विश्वबंधुत्वीय नैतिकता और शिक्षाशास्त्र के एक प्रतिदर्श के तौर पर पढ़ने के लिए तर्क दिया है। साथ ही, यह सुझाव दिया है कि उनका उपन्यास 'द होम एंड द वर्ल्ड' विशेष रूप से नागरिकता के मानवतावादी आदर्श को प्रदर्शित करता है। अमर्त्य सेन नुस्बाम के तर्क की मुख्य पंक्ति को प्रतिध्वनित करते हैं, वह भी यह दावा करते हैं कि टैगोर देशभक्ति के आलोचक थे।

नुस्बाम एक ऐसी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए टैगोर (जिन्हें 'यूनिवर्सल मैन' भी कहा गया) के विचारों का उपयोग करती हैं, जहाँ छात्रों को यह नहीं सिखाया जाता है कि वे एक विशेष राष्ट्र के नागरिक हैं, बल्कि सबसे पहले वे मनुष्यों की दुनिया के नागरिक हैं। वह टैगोर के सार्वभौमिक मानव के दृष्टिकोण का उपयोग करती हैं, जो उन स्थानीय या राष्ट्रीय सीमाओं से बँधा नहीं है। नुस्बाम के अनुसार, 'सार्वभौमिक मानव के बारे में टैगोर का विचार, एक विश्व नागरिक या विश्वबंधुत्व की अवधारणा के समान है, जहाँ हम उन सांस्कृतिक सीमाओं को पार करते हैं, जो हमारे वृद्धि और विकास को सीमित और बाधित करते हैं।'

दुनियाभर के अनेक विद्वानों ने यह माना है कि टैगोर के विचार आधुनिक युग में मानव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनकी रचनाओं को दुनियाभर में अनेक भाषाओं में अनुवाद करके पढ़ा जाता है। उनकी रचनाएँ वैश्विक संचार का माध्यम बनी हैं और आज भी रचनात्मक मस्तिष्क को प्रेरित करती हैं। उनकी कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियाँ हैं—मानसी (1890), सोनार तारी (1894), गीतांजलि (1910), चित्रांगदा (1892), गोरा (1910) और घरे-बाइरे (1916)। इन उल्लेखनीय कार्यों के अलावा, भारत का राष्ट्रगान—'जन-गण-मन' और बाँग्लादेश का राष्ट्रगान 'आमार शोनार बाँग्ला' उनकी रचनाएँ थीं। इसके अलावा, श्रीलंका का राष्ट्रगान भी उनकी रचनाओं से प्रेरित था।

बाल साहित्य और बालक

बालक प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसार का सबसे सुंदर, अद्‌भुत तथा अनुपम उपहार है। यूँ तो नदी, पहाड़, चाँद-सितारे, फूल और तितली, भँवरे, पंछी का कलरव, सब कुछ इस जगत में बहुत सुंदर और अनूठा है, पर इन सबसे बढ़कर बालक प्रकृति का नायाब नमूना है। यह कुदरत का प्रतिरूप है, परमात्मा का पावन प्रसाद है, जिसकी भावनाएँ और वैचारिक परिकल्पनाएँ नए जगत की नवीन संभावनाओं को मूर्त करती हैं।

डॉ. सत्यनारायण सत्य

जन्म : 12 जून, 1980

शिक्षा : पी-एच.डी. और लेख रचना में डिप्लोमा

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई लेख प्रकाशित। प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें हैं—दिन आए फिर छुट्टी वाले, अनोखा फैसला, धन-धन म्हारो राजस्थान तथा समय के साथ-साथ।

संप्रति : प्राध्यापक

सम्मान : भारतीय भाषा बाल कल्याण संस्थान, खटीमा (उत्तराखंड), महाकाली साहित्य संगम, कंचनपुर (नेपाल) पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी, शिलांग (मेघालय) सहित बाल साहित्य शिरोमणि सम्मान, बाल साहित्य गौरव सम्मान जैसे कई सम्मान प्राप्त।

संपर्क : मोबाइल— 9460351881

ईमेल— satyatatela@gmail.com

बालक माता-पिता के सपनों का संसार तो होता ही है, वह परिवार, समाज और राष्ट्र का भी एक साकार सपना होता है, जो आगे चलकर, बड़ा बनकर, न सिर्फ बड़े सपने देखता है, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र की सामाजिक, नैतिक और राष्ट्रीय उन्नयन की चेतना का प्रभावी संबल और आधार भी बनता है। पर बालक का सर्वांगीण विकास हो सके, वह अपने बचपन से ही नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों से परिपूरित हो सके, विकसित हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि वह समग्र रूप से बहुमुखी प्रतिभा तथा क्षमताओं के साथ अपने जीवन को अग्रगामी बनाए और राष्ट्र तथा समाज-निर्माण में अपना योगदान दे।

बालक के सर्वांगीण विकास के लिए बाल साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है या यूँ कह दिया जाए कि बालक और बाल साहित्य एक-दूजे के पूरक होते हैं तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बालक के बिना बाल साहित्य की परिकल्पना नहीं की जा सकती है तो बाल साहित्य भी बालक के बिना संभव नहीं है। बाल साहित्य अर्थात बालकों का, बालकों के लिए लिखा गया साहित्य। यही वह साहित्य होता है, जिसे पढ़कर बच्चा राष्ट्र का जिम्मेदार नागरिक बनता है। मनोवैज्ञानिकों ने आयु वर्ग के अनुसार बालकों की तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं—

(1) शिशु वर्ग (3 से 6 वर्ष)
(2) बालक वर्ग (7 से 12 वर्ष)
(3) किशोर वर्ग (13 से 19 वर्ष)

उक्त तीनों ही आयु वर्ग को ध्यान में रखकर लिखा गया साहित्य, बाल साहित्य के

अंतर्गत ही आएगा। प्रसिद्ध लेखक डॉ. मस्तराम कपूर ने बाल साहित्य को पाँच अर्थों में देखा है–

(1) बालकों द्वारा रचित साहित्य
(2) बालकों के लिए रचित साहित्य
(3) बालकों के विषय में लिखा गया साहित्य
(4) बालकों द्वारा आस्वाद्य साहित्य
(5) साहित्य का लघु या छोटा रूप

“लोरियाँ और शिशु-गीत बच्चों को बहुत शीघ्र नए, अछूते और अनजाने शब्दों से रू-ब-रू कराते हैं। यदि बच्चे को अच्छे साहित्य से जोड़ा जाए तो भाषा की समझ, पकड़ और ज्ञान परिमार्जित होता रहेगा।”

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि बच्चों का, बच्चों के लिए, बच्चों के द्वारा या बच्चों से संबंधित साहित्य इन श्रेणियाँ में रखा जा सकता है, पर मोटे-मोटे या समग्र रूप से हम यह मान सकते हैं कि बच्चों के लिए लिखी कहानियाँ, कविताएँ, शिशु-गीत, आलेख या विविध विधाओं की रचनाएँ ही ‘बाल साहित्य’ कहलाती हैं। बालक के सर्वांगीण विकास में बाल साहित्य अपनी प्रभावी भूमिका अदा करता है। आइए, कुछ प्रमुख उपादेयताओं के बारे में बात करते हैं–

बालक का भाषायी कौशल

बच्चा बचपन में ही कच्ची मिट्टी का लौंदा होता है, उसे मनचाहा आकार दिया जा सकता है। यदि हम शिशु अवस्था से ही श्रेष्ठ बाल साहित्य से उसका परिचय कराएँगे तो उसमें भाषा का कौशल स्वाभाविक रूप से विकसित हो जाएगा। लोरियाँ और शिशु-गीत बच्चों को बहुत शीघ्र नए, अछूते और अनजाने शब्दों से रू-ब-रू कराते हैं। यदि बच्चे को अच्छे साहित्य से जोड़ा जाए तो भाषा की समझ, पकड़ और ज्ञान परिमार्जित होता रहेगा। हिंदी और संस्कृत के साथ-साथ स्थानीय, देसी, विदेशी भाषाओं का शब्द-भंडार, उनका व्याकरण ज्ञान अभिवृद्धि को प्राप्त होता है।

बालकों का नैतिक-चारित्रिक मूल्य-विकास

अच्छे बाल साहित्य के माध्यम से बालक में चहुँमुखी विकास होता है। पढ़ने-लिखने के साथ-साथ बाल साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से वह राष्ट्रीय, सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक और चारित्रिक मूल्य का संवर्धन भी सहजता से प्राप्त कर लेता है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, शांति जैसे कई नैतिक मूल्य तथा मानवीय मूल्यों का विकास बालपन में भी हो जाया करता है, जो अमिट होकर बड़े होने के बाद भी उसे राष्ट्र का जिम्मेदार नागरिक बनाने में सहयोगी होता है। बालक में सामाजिकता, राष्ट्रीयता, पारिवारिक सद्भावना, देशप्रेम, शुचिता जैसे कई मूल्यों का विकास बाल साहित्य के माध्यम से बहुत सफलता से संपन्न हो जाता है।

समय के सापेक्ष करता है बाल साहित्य

बच्चा बढ़ता है तो लगातार समय भी परिवर्तित होता जाता है। पीढ़ी अंतराल जैसी पारिवारिक समस्याओं के जूझने पर बाल साहित्य ही बालक का एकमात्र सहारा होता है। बाल साहित्य के माध्यम से वह दादा की उम्र की परंपराओं को तो महसूस करता ही है, अपनी उम्र के बच्चों की कल्पनाओं में भी उड़ान भरता है। प्राचीन दकियानूसी अवधारणाओं से मुक्ति, अंधविश्वास, कुप्रथाएँ तथा पाखंड और काल-कवलित हो चुकी मान्यताओं से मुक्ति उसे बाल साहित्य के माध्यम से ही मिलती है। वहीं विज्ञान, आधुनिकता, वर्तमान और भविष्य का अध्ययन, ज्ञान इत्यादि अच्छा बाल साहित्य ही प्रदान करता है। अतः एक तरह से समय की सापेक्षता में बालक और बाल साहित्य पिरोये हुए लगते हैं।

बालक को पाठक ही नहीं, लेखक और विचारक भी बनाता है

अच्छा बाल साहित्य सर्वप्रथम लेखक को श्रोता या पाठक बनाता है, वह कहानी और कविता पढ़ते-पढ़ते एक अच्छा पाठकीय गुण भी विकसित कर लेता है, जिससे बाल साहित्य के माध्यम से बड़ा होकर प्रौढ़ साहित्य का अच्छा पाठक बन जाता है। आज हम नए लोगों को पढ़ने की रुचि न होने का या किताबों को पाठक नहीं मिल पाने का रोना हर समय रोते रहते हैं, वह एक तरह से बच्चों को बाल साहित्य से दूर रखे जाने का ही दूरगामी परिणाम होता है। अच्छा साहित्य पढ़ते-पढ़ते बच्चा अच्छा पाठक तो बनता ही है, वह अच्छा लेखक, चिंतक और विचारक भी बन जाता है। कला, दर्शन, राजनीति, खेल, फिल्म, संस्कृति, आर्थिक, मेडिकल या अन्य तकनीकी विषयों में काम करने वाले अधिकांश विद्वान या विशेषज्ञ बचपन में बाल साहित्य के भी अच्छे पाठक रहे हैं।

कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि बालक और बाल साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि आपको स्तरीय बाल साहित्य का लेखन-प्रकाशन करना है, तो उसके केंद्र में बालक को रखना ही पड़ेगा अथवा यदि आपको समाज में श्रेष्ठ बालकों का निर्माण करना है, अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए सुगठित जीवन प्रदाता बनाना है, तो बालकों को हित के साथ रचा गया, केवल मनोरंजन प्रदत्त नहीं, बल्कि सोद्देश्य बाल साहित्य देना ही पड़ेगा। हर परिवार में, हर विद्यालय में, बाल साहित्य मँगवाया जाए, खरीदा जाए। बाल साहित्य रचनाकारों का साहित्य, उनके आपसी वाहवाही तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्हें बच्चों के हाथों तक पहुँचाया जाए। यही समय की माँग है, यही वर्तमान समय की प्रासंगिकता और सार्थकता है, क्योंकि बालक बाल साहित्य के बिना अधूरा है तो बाल साहित्य भी बालक के बिना पूरा नहीं है।

स्वाधीनता की लड़ाई में हरिद्वार

भारतवर्ष में सन् 1857 की मेरठ की सशस्त्र क्रांति के बाद अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की भयंकर ज्वाला लोगों के दिलों में धधकने लगी थी। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि तत्कालीन अंग्रेजी हुकूमत भी बगावत की घटनाओं को सख्ती से कुचलने लगी थी। पौराणिक काल से ही 'कुंभ नगरी' के नाम से विख्यात गंगा के पावन तीर्थ, हरिद्वार में भी क्रांति के स्वर मुखर हो रहे थे। इसका कारण यह भी था कि तत्कालीन अंग्रेजी ऑफिसर कॉटले और थॉमसन ने हिंदुओं की आस्था के केंद्र 'गंगा' के प्रवाह को रोककर मायापुर

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

जन्म : 07 जून, 1941

संप्रति : हिंदी के प्रख्यात कवि एवं लेखक। अध्यापन का 35 वर्षों का अनुभव है और पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, पीलीभीत (महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली) के सेवानिवृत्त प्राचार्य हैं।

प्रकाशन : 24 से ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें चार बाल कविता-संग्रह भी शामिल हैं।

सम्मान : पं. मदन मोहन मालवीय सम्मान, काव्य रत्न पुरस्कार, गीत रत्नाकर पुरस्कार, साहित्यश्री पुरस्कार और नाट्य रत्न पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल– 9412070351

ईमेल– ynsarun@gmail.com

(हरिद्वार) से गंगा की नहर बना दी थी, जो हरिद्वार से कानपुर तक बनायी गई थी।

गंगा की धारा को रोकने और गंगा की नहर बनाने के विरुद्ध सन् 1916 में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में बहुत बड़ी लड़ाई लड़ी गई थी, जिसमें उस समय की लगभग सभी बड़ी रियासतों के नरेश अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट होकर लड़े थे। उसी दौरान सन् 1916 में मालवीय जी के सद्प्रयासों से 'गंगा सभा' की स्थापना हुई थी। इस आंदोलन का यह परिणाम हुआ था कि तब की ब्रिटिश हुकूमत को हरिद्वार की 'गंगा सभा' के साथ एक लिखित समझौता करना पड़ा था, जिसके अनुसार हरिद्वार की पवित्र 'हर की पैड़ी' पर गंगा को वार्षिक सफाई और देखरेख के लिए बंद किए जाने के दिनों में भी 'तीन फीट जल' अवश्य विद्यमान रहेगा। यह समझौता आज भी विद्यमान है।

अंग्रेजों की खुन्नस बढ़ गई

पुराणों में आज भी भारत की मोक्षदायिनी सात पुरियों का उल्लेख 'सप्तपुरी' के रूप में मिलता है। ये सात मोक्षदायिनी पवित्र पुरियाँ इस प्रकार हैं–

1. अयोध्या
2. मथुरा
3. मायापुरी (हरिद्वार)
4. काशी
5. कांची (तमिलनाडु)
6. अवंतिका (उज्जयिनी)
7. द्वारिकापुरी

इन सप्तपुरियों में हरिद्वार का महत्व वस्तुतः 'मायापुरी' के रूप में विद्यमान है। आज भी यहाँ 'दश महाविद्या मंदिर' विद्यमान है। हरिद्वार मूलतः गंगा का विश्वप्रसिद्ध तीर्थ रहा है, जहाँ प्रत्येक 12 वर्षों के बाद 'महाकुंभ' का आयोजन होता है।

धार्मिक नगरी हरिद्वार में दशनामी संन्यासियों के अखाड़े आज भी विद्यमान हैं। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में 'महाकुंभ' के आयोजन की परंपरा तो पौराणिक काल से चली आ रही है। यहाँ की धर्मप्राण जनता में 'गंगा, गौ और गीता' के प्रति असीम आस्था और श्रद्धा का भाव नैसर्गिक रूप से रहा है और आज भी विद्यमान है।

कहा जाता है कि 'गौ माता और गंगा' तो सनातन हिंदू धर्म का आधार रहा है। भारतीय संस्कृति के ये दोनों विशिष्ट प्रतीक जन-जन की आस्था के मान-बिंदु होने के साथ ही सामाजिक और आर्थिक ढाँचे का आधार भी रहे हैं। मनोविज्ञान के अनुसार, मनुष्य एक बार स्वयं के ऊपर किया गया प्रहार तो सहन कर सकता है, लेकिन अपनी आस्था के केंद्रों पर कोई चोट वह सहन नहीं कर पाता और प्रबल विरोध तथा विद्रोह करने पर उतर आता है।

'गंगा-बंदी' के खिलाफ हुए आंदोलन और महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी द्वारा 'गंगा सभा' की स्थापना से तत्कालीन अंग्रेज अधिकारी खुन्नस खाये हुए थे, इसलिए वे किसी-न-किसी तरह हिंदुओं को सबक सिखाना चाहते थे। यह मौका अंग्रेजों को सन् 1918 में मिल गया, जब उन्होंने एक मुस्लिम थानेदार को माध्यम बनाकर, हरिद्वार से लक्सर जाने वाली सड़क पर पड़ने वाले गाँव 'कटारपुर' में विशेष रूप से 'बकरीद' के मौके पर गायों के वध की योजना बनाई।

बकरीद पर गउओं की कुर्बानी का षड्यंत्र

17 सितंबर, 1918 को 'बकरीद' का त्योहार था। इसी दिन एक बड़े षड्यंत्र के अंतर्गत 'गो-हत्या' की योजना बनायी गई। स्मरणीय है कि धर्मप्राण देवभूमि मायापुरी (हरिद्वार) में कभी ऐसा अनर्थ होना तो दूर, सोचा तक नहीं गया था। जब बकरीद के अवसर पर सार्वजनिक रूप से 'गो-हत्या' किए जाने की घोषणा हुई तो सनातनी हिंदुओं ने ज्वालापुर के थाने में इसकी रिपोर्ट लिखवाई। हरिद्वार के उपनगर ज्वालापुर में (जो उस समय रुड़की तहसील का एक परगना होता था) थानेदार के रूप में तैनात था 'मसीउल्लाह', जो अंग्रेजों की शह पर यह सब करवा रहा था। संयोग से उसी समय हरिद्वार के थाने में शिवदयाल सिंह थानेदार के रूप में तैनात थे और उन्होंने धर्मप्राण हिंदुओं को वचन दिया था कि वे किसी भी सूरत में 'गो-हत्या' का जघन्य पाप नहीं होने देंगे।

हिंदुओं के प्रबल विरोध और झगड़े के डर से 17 सितंबर, 1918 को 'बकरीद' के दिन तो कुछ नहीं किया गया, लेकिन अगले दिन 18 सितंबर, 1918 को ज्वालापुर के थानेदार मसीउल्लाह की साजिश से गौ हत्यारों ने सार्वजनिक रूप से 'पाँच गउओं' की कुर्बानी देने की घोषणा करवा दी। इसी के अनुसार, पाँच गायों को इमली के पेड़ से बाँधकर उनकी कुर्बानी की तैयारी कर ली गई। कट्टर लोग जोरों से मज़हबी नारे लगा रहे थे।

इस उत्तेजनापूर्ण वातावरण में हनुमान मंदिर के महंत श्री राम पुरी जी महाराज के नेतृत्व में सैकड़ों निर्भीक हिंदू युवक 'गो-हत्या' रोकने के लिए अस्त्र-शस्त्र लिये हुए, विरोध करने के लिए तैयार खड़े हुए थे। जैसे ही कट्टर कसाइयों ने गउओं की कुर्बानी के लिए उनकी गरदन पर छुरी रखी, वैसे ही पूरी तरह से तैयार खड़े हिंदू गो-भक्तों ने 'वीर बजरंगी' और 'हर हर महादेव' के प्रबल जयघोष के साथ धावा बोलकर कुर्बानी के लिए बाँधी गई सभी गायों को कसाइयों से छुड़ा लिया।

कट्टरपंथी भी हथियारों से लैस पूरी तरह तैयार थे। प्रबल संघर्ष हुआ, जिसमें जनश्रुति के अनुसार तीस गो-हत्यारे मारे गए और बाकी जान बचाकर भाग खड़े हुए। दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें कई हिंदू गो-रक्षक भी हताहत हुए। कहा जाता है कि नेतृत्व कर रहे हनुमान मंदिर के महंत श्री राम पुरी जी के शरीर पर चाकुओं और छुरों के 48 गहरे घाव लगे थे और वे बच नहीं सके।

अंग्रेज-प्रशासन का आतंक

पुलिस प्रशासन को जैसे ही थानेदार मसीउल्लाह के माध्यम से रचे गए 'गो-हत्या के षड्यंत्र' के असफल हो जाने और कई गो-हत्यारों के संघर्ष में मारे जाने का पता चला, तो अंग्रेज-प्रशासन बुरी तरह बौखला उठा और उसने क्षेत्र में आतंक मचा दिया। कहा जाता है कि धर-पकड़ करके 172 लोगों को थाने में बंद कर दिया गया। कितने ही निर्दोष लोगों को जेल में डालने का भय दिखलाकर उनसे भारी रिश्वत वसूली गई। आचार्य दर्शनानंद जी द्वारा स्थापित गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के कई छात्रों को भी इस कांड में फँसा दिया गया, लेकिन हिंदुओं का मनोबल अंग्रेज-प्रशासन नहीं तोड़ सका।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद पंजाब के अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के तत्कालीन आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री 'वेदतीर्थ' ने कांग्रेस अधिवेशन में जाकर महात्मा गांधी को इस घृणित षड्यंत्र और पुलिस के आतंक का विवरण दिया, तो गांधी जी जाने क्यों, शांत रहे। दूसरी ओर, हिंदुओं के लिए गंगा की अक्षुण्ण धारा के लिए प्रबल संघर्ष करने वाले और हरिद्वार में 'गंगा सभा' की स्थापना करने वाले, हिंदू-हृदय सम्राट महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी का हृदय पीड़ा से भर उठा। यही कारण था कि मालवीय जी ने निर्दोष गो-भक्तों के विरुद्ध अंग्रेज-प्रशासन द्वारा लगाये गए मुकदमों को लड़ने में अपनी पूरी ताकत लगा दी।

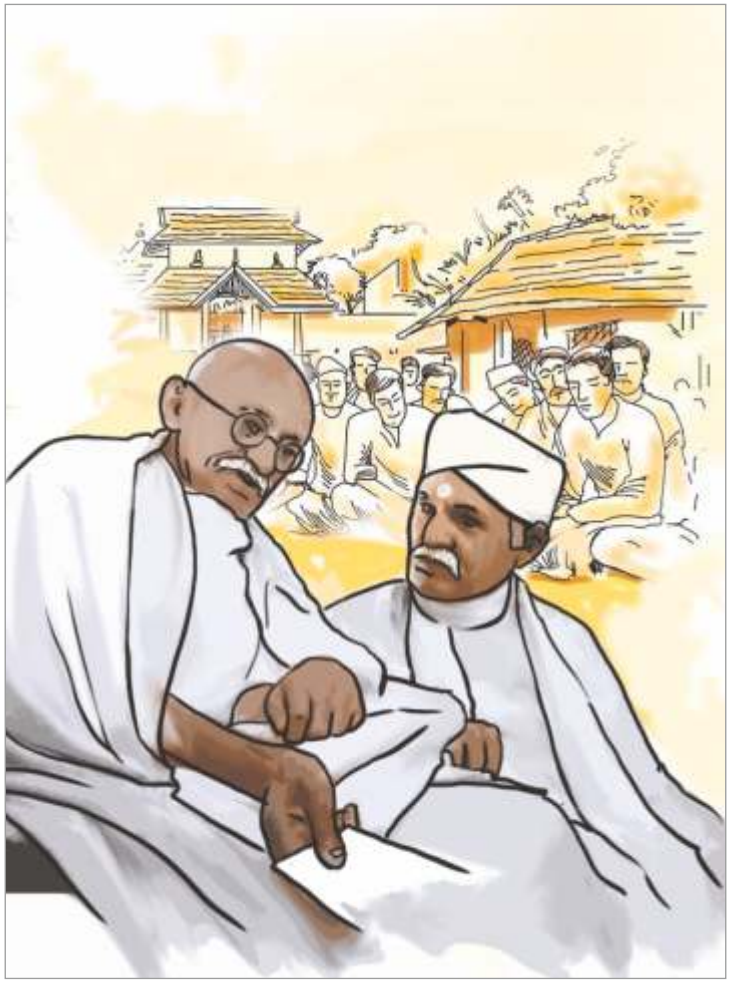

08 अगस्त, 1919 को न्यायालय ने मुकदमे का जो निर्णय दिया, उसके अनुसार चार गो-भक्तों को फाँसी की सजा सुनायी गई और हरिद्वार के तब के थानेदार शिवदयाल सिंह सहित कुल 135 लोगों को 'कालापानी' की सजा दी गई। जो गो-भक्त इस विद्रोह में अंडमान निकोबार द्वीप की जेल में भेजे गए थे, उनमें से कई तो भयंकर उत्पीड़न और शोषण के कारण वहीं मर गए। महानिर्वाणी अखाड़ा, कनखल के श्रीमहंत रामगिरि जी भी इस विद्रोह के अभियुक्तों में शामिल थे, लेकिन वे घटना के बाद ही गायब हो गए थे और ब्रिटिश पुलिस की लाख कोशिशों के बाद भी पकड़े नहीं जा सके थे। इस घटना के बाद ब्रिटिश पुलिस ने इतना घोर आतंक मचाया कि भयाक्रांत लोगों ने गाँव और क्षेत्र ही छोड़ दिया था। कहा जाता है कि कटारपुर गाँव में इस घटना के बाद अगले आठ वर्षों तक कोई फसल तक नहीं बोयी गई थी।

08 फरवरी, 1920 को अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ खुले विद्रोह के आरोप में कनखल स्थित उदासीन अखाड़ा के 45 वर्षीय श्रीमहंत ब्रह्मदास जी और 60 वर्षीय चौधरी जानकीदास जी को प्रयागराज की जेल में, 32 वर्षीय डॉ. पूर्ण प्रसाद जी को लखनऊ की जेल में और मात्र 22 वर्षीय युवा श्री मुक्खा सिंह चौहान को वाराणसी की जेल में फाँसी पर लटका दिया गया। बताया जाता है कि चारों के चारों वीर गो-भक्त 'गौ माता की जय' कहते हुए फाँसी पर झूल गए। इतिहास गवाह है कि प्रयागराज में इन महान गो-भक्तों के सम्मान में उस दिन पूर्ण हड़ताल रखी गई थी। इस विद्रोह के बाद हिंदुओं में जबरदस्त जागृति आई थी। भारतवर्ष के महान गो-भक्त लाला हरदेव जी सहाय ने कटारपुर में प्रतिवर्ष 08 फरवरी को 'गो-भक्तों का बलिदान पर्व' मनाने की प्रथा आरंभ की थी, जो निरंतर जारी है। अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध और गो-रक्षा के लिये हुए इस क्रांतिकारी संघर्ष और बलिदान का साक्षी 'इमली का पेड़' और 'गो-स्मारक' आज भी पूरे राष्ट्र को महान गो-भक्तों के बलिदान और अंग्रेजी शासन की क्रूरता का स्मरण कराता है।

गौरा देवी की पराक्रम कथा

26 मार्च, 1974 को भारत-चीन सीमा के पास स्थित रेणी गाँव की मुट्ठीभर जनजातीय महिलाओं ने गौरा देवी के नेतृत्व में अपने जंगल के 2,451 पेड़ों को बचाने के लिए चिपको आंदोलन किया था। यह वर्ष उस आंदोलन का स्वर्ण जयंती वर्ष है। इस अनूठे आंदोलन की गूँज अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुँची थी, जिसने संयुक्त राष्ट्र तक को वन एवं पर्यावरण के प्रश्नों को अपनी वैश्विक चिंताओं की सूची में सर्वोपरि रखने के लिए प्रेरित किया था। आंदोलन की पृष्ठभूमि और उत्तराखंड की तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर विचार करने पर हम पाते हैं कि आजादी के बाद ग्राम स्वराज्य के उद्देश्यों को लेकर चलने वाली गांधीवादी संस्थाओं का उत्तराखंड में जनचेतना को जगाने एवं सहकारिता की संस्कृति को बढ़ाने में काफी योगदान रहा। ऐसी संस्थाओं में चण्डी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में चलने वाली गोपेश्वर (जिला चमोली) की 'दशोली ग्राम स्वराज्य संघ' अग्रणी स्थान रखती है। यह इस बात से भी स्पष्ट है कि जयप्रकाश नारायण जी की अध्यक्षता वाली 'केंद्रीय सीमा क्षेत्र समन्वय समिति' ने 1968 में अपना तीन दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन इसी संस्था में रखा था, जिसमें उन्होंने कहा था, "श्री चण्डी प्रसाद भट्ट से इतना अधिक प्रभावित हुआ हूँ कि मुझे 1920-21 के स्वतंत्रता आंदोलन की यादें ताजा हो आई हैं। यह उस उत्साह और समर्पण को दिखाता है, जिसे आप कल के समतामूलक एवं समृद्ध उत्तराखंड को बनाने के लिए कर रहे हैं।"

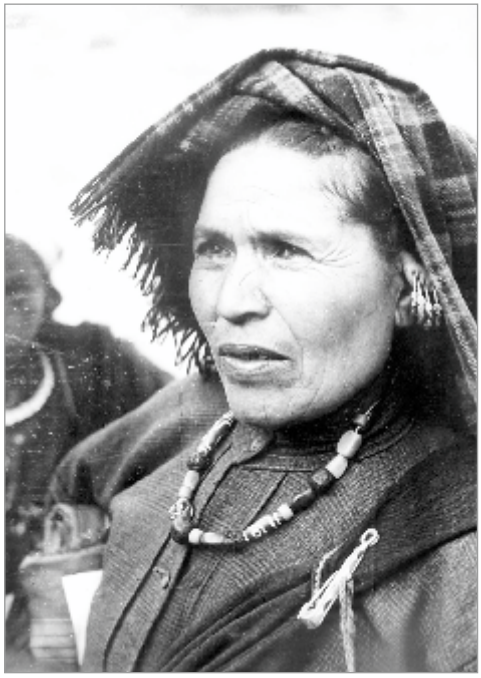

गौरा देवी

दशोली ग्राम स्वराज्य संघ काष्ठ-शिल्प और तारपीन तेल के अलावा जड़ी-बूटी संग्रह का काम भी करता था, लेकिन वनाधिकारियों के मनमानीपूर्ण रवैये के कारण उन्हें पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखने पर पता चलता है कि वन विभाग में कमाई के उद्देश्य से औपनिवेशिक काल में बने मनमानीपूर्ण नियमों और बंदिशों से संपूर्ण भारत में ही वनों पर आधारित कुटीर उद्योग को चला रही संस्थाएँ त्रस्त थीं, जिसकी पुष्टि गांधीवादी संस्थाओं के एकीकृत मंच 'सर्व सेवा संघ' के 31 दिसंबर, 1972 को कोच्चि में हुई अपनी प्रबंध समिति की बैठक में इन शब्दों में व्यक्त किये गए क्षोभ से होती है—"प्रबंध समिति को इस बात का आश्चर्य और दुख है कि उत्तराखंड में ही नहीं, देश के अन्य क्षेत्रों में भी सरकार द्वारा वनाधारित उद्योगों को कच्चा माल देने में ग्रामोद्योगों के प्रति अन्यायपूर्ण पक्षपात किया जा रहा है। यह वन विशेषज्ञों की राय के खिलाफ है।" लेकिन इससे वन विभाग के रवैये पर कोई फर्क नहीं पड़ा। उसके अधिकारी वन विज्ञान का हौवा दिखाकर अपनी मनमानी करते रहे। ऐसा करके वे अपने को वनों का हितचिंतक जताने का नाटक करते थे। उनके तथाकथित हितचिंतन की पोल तब खुल गई, जब एक तरफ उन्होंने 'दशोली ग्राम स्वराज्य संघ' की हल का जुआ बनाने के लिए अंगू के पेड़ों की

मोहन प्रसाद डिमरी

जन्म : 05 जनवरी, 1953, चमोली

शिक्षा : एम.ए.

संप्रति : स्वतंत्र लेखन

प्रकाशन : बाल कहानी संग्रह 'नंदा के वरदान' प्रकाशित। 'हिमालय गॉडेस' का हिंदी अनुवाद प्रकाशित। विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेखन।

संपर्क : मोबाइल— 9410960193
ईमेल— dimri.mp@gmail.com

माँग वन विभाग के विरुद्ध होने के आधार पर ठुकरा दी और दूसरी तरफ उसी समय खेल का सामान बनाने वाली बाहर की एक निजी कंपनी को ये पेड़ मंजूर कर दिए। वन विभाग की यही मनमानी और भेदभाव से भरा व्यवहार चिपको आंदोलन का कारण बना, जो विशुद्ध रूप से आजीविका के प्रश्नों को लेकर हुआ था।

'दशोली ग्राम स्वराज्य संघ' ने तय किया कि वे इस भेदभाव का विरोध करेंगे और कंपनी को अंगू के पेड़ नहीं काटने देंगे। विरोध करने के लिए चण्डी प्रसाद भट्ट ने पेड़ों पर चिपकने के अनूठे तरीके को अपनाने का निश्चय किया, जिसे वे प्रतिकार का सौम्यतम स्वरूप कहते हैं। जब कंपनी के लोग पेड़ काटने के लिए गोपेश्वर के पास मंडल के जंगल में पहुँचे तो संस्था के आह्वान पर मंडल गाँव के

रेणी में लोगों को संबोधित करते हुए चण्डी प्रसाद भट्ट

प्रधान आलम सिंह बिष्ट के नेतृत्व में 24 अप्रैल, 1973 को पहली बार 'चिपको आंदोलन' हुआ, जिसके कारण कंपनी पेड़ों को नहीं काट पाई। हारकर वन विभाग ने संस्था को भी अंगू के पेड़ देने की पेशकश की, लेकिन चण्डी प्रसाद भट्ट ने इसे ठुकरा दिया और वनों से ठेकेदारी प्रथा समाप्त करने एवं स्थानीय उद्योगों को प्राथमिकता के अनुसार कच्चा माल देने की लंबे समय से की जा रही अपनी माँगों को मानने के लिए कहा। उनके इस कदम ने आजीविका के प्रश्नों को लेकर शुरू हुए चिपको आंदोलन को वनों और वनवासियों के अस्तित्व के प्रश्नों से जोड़ दिया। अस्तित्व के ये प्रश्न अचानक ही पैदा नहीं हुए थे, इनके पीछे 1970 में अलकनंदा और उसकी सहायक नदियों में आई बाढ़ से हुई भीषण तबाही से उपजा चिंतन था। संस्था ने बाढ़ के कारणों को जानने के लिए किये गए अपने अध्ययन में पाया था कि बाढ़ उन्हीं नदियों में आई थी, जिनके जलागम क्षेत्रों में पिछले वर्षों में बड़े पैमाने पर पेड़ काटे गए थे। इस तथ्य को सरकार तक पहुँचाने के लिए संस्था ने 22 अक्तूबर, 1971 को ग्रामीणों को लेकर गोपेश्वर में विशाल प्रदर्शन किया था, जिसमें प्रमुख रूप से जो नारा गूँजा था, वह था—'वन जागे, वनवासी जागे।'

अपनी हार को जीत में बदलने के लिए वन विभाग ने कंपनी को चुपके से मंडल के स्थान पर गोपेश्वर से लगभग 100 किलोमीटर दूर केदारनाथ के पास फाटा-रामपुर के जंगल में अंगू के पेड़ काटने की स्वीकृति दे दी। इसके पीछे शायद यह विचार काम कर रहा था कि चण्डी प्रसाद भट्ट गोपेश्वर के बाहर आंदोलन नहीं चला पाएँगे और इस तरह से वन विभाग 24 अप्रैल, 1973 के आंदोलन के प्रभाव को फैलने से रोकने में समर्थ हो जाएगा, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। फाटा-रामपुर में एक स्थानीय समाजसेवी केदारसिंह रावत के नेतृत्व में आंदोलन चलाया गया, जिससे कंपनी वहाँ भी पेड़ नहीं काट पाई और आंदोलन गोपेश्वर से बाहर फैलने में सफल हो गया।

तब किसी को नहीं पता था कि आंदोलन बहुत जल्दी अपने उत्कर्ष पर पहुँचने वाला है। चण्डी प्रसाद भट्ट को जब रेणी के जंगल

में 2,451 पेड़ों की नीलामी होने का पता चला तो उन्होंने वहाँ भी आंदोलन चलाने का निश्चय किया। वहाँ के स्थानीय जनप्रतिनिधियों—गोविंद सिंह रावत और वासवानंद नौटियाल के साथ वे पूरे इलाके में घूमे और लोगों को समझाया कि यदि रेणी का जंगल कटा तो पूरे इलाके को बाढ़ और भूस्खलन से कोई नहीं बचा पाएगा। रेणी गाँव चीन सीमा से लगे नीति घाटी के जनजातीय क्षेत्र में स्थित है, जिसके बगड़ (नदी तट) और पहाड़ 1970 में आई बाढ़ और

“चण्डी प्रसाद भट्ट, हयात सिंह के साथ दूसरे दिन प्रातः साढ़े दस बजे रेणी पहुँच गए। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सारे मजदूर, जिन्हें उस समय जंगल में होना चाहिए था, अपने माल-असबाब के साथ नीचे सड़क पर खड़े थे।”

भूस्खलनों से बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हुए थे। भट्ट के आह्वान पर इलाके के लोगों ने अपने जंगल को बचाने की ठान ली और 15 मार्च, 1974 को घाटी के वामपंथी नेता गोविंद सिंह रावत के नेतृत्व में जोशीमठ में गाजे-बाजों के साथ एक विशाल जुलूस निकालकर अपना इरादा भी जता दिया। चण्डी प्रसाद भट्ट 03 जनवरी, 1974 को देहरादून के टाउन हॉल में चल रही नीलामी में भी गए और वहाँ अधिकारियों व ठेकेदारों को बताया कि उन्हें रेणी में चिपको आंदोलन का सामना करना पड़ेगा, लेकिन उनकी चेतावनी को हँसी में उड़ा दिया गया।

इस बीच आंदोलन में कुछ ऐसा भी घटा, जो आंदोलन को कमजोर कर सकता था। प्रसिद्ध सर्वोदयी नेता सुंदरलाल बहुगुणा ने आंदोलन में वामपंथी गोविंद सिंह रावत के प्रवेश के विरोध में आंदोलन से अपना समर्थन वापस ले लिया। उनके कहने पर भट्ट जी के कुछ सहयोगियों ने भी आंदोलन से किनारा कर लिया। इसका उल्लेख करते हुए चण्डी प्रसाद भट्ट ने अपनी पुस्तक ‘गुदगुदी’ में लिखा है, ‘इस घटना के बाद मैंने दशोली ग्राम स्वराज्य संघ के साथियों से विचार-विमर्श किया और निश्चय किया कि मंडल और फाटा-रामपुर की तरह स्थानीय लोगों को जागृत कर रेणी में चिपको आंदोलन चलाया जाएगा। जंगल की रक्षा के लिए दिनोंदिन मेरा आत्मविश्वास बढ़ता गया। स्थानीय जनजागरण को देखते हुए मुझे पूरा भरोसा था कि रेणी का जंगल नहीं कट सकता है, चाहे चारों ओर से दमन ही क्यों न हो।’

प्रशासन चिपको आंदोलन को मिल रहे स्वतःस्फूर्त जन-समर्थन की वास्तविकता को मानने को तैयार नहीं था। चीनी आक्रमण के बाद सीमा तक सड़क बनाने के लिए दस-बारह वर्ष पहले नीति घाटी के ग्रामीणों के खेत कटे थे, जिसका मुआवजा उन्हें नहीं मिला था। प्रशासन ने चाल चलते हुए घाटी के लोगों को मुआवजा लेने के लिए 26 मार्च, 1974 को 80 किलोमीटर दूर चमोली तहसील में बुला दिया (जबकि यह मुआवजा जोशीमठ तहसील में बँटना चाहिए था)। दूसरी ओर देहरादून में रहने वाले अरण्यपाल ने चण्डी प्रसाद भट्ट से वन नीति के बारे में बातें कीं और बताया कि आगे की बातचीत 26 मार्च को गोपेश्वर में होगी, अतः वे उस दिन गोपेश्वर में ही रहें।

उस समय तक महिलाओं की आंदोलनों में न के बराबर भागीदारी होती थी। फिर, रेणी जैसे दूरस्थ और पिछड़े क्षेत्र के जनजातीय इलाके की महिलाएँ अपने बल पर कोई आंदोलन कर सकती हैं, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस कारण घाटी को पुरुषों से खाली कर और चण्डी प्रसाद भट्ट को गोपेश्वर में रोककर अपनी जीत को निश्चित मानते हुए वनाधिकारियों ने 26 मार्च, 1974 को ठेकेदार के मजदूरों को पेड़ काटने के लिए जंगल में भेज दिया।

26 मार्च को चण्डी प्रसाद भट्ट अपनी संस्था में अरण्यपाल और दूसरे अधिकारियों के साथ सार्थक बातचीत होने की प्रतीक्षा में थे। वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि अधिकारी उनसे बातचीत करने के लिए नहीं, बल्कि समय काटने के इरादे से वहाँ आए हैं। जोशीमठ से कोई खबर न मिलने से भी वे चिंतित थे। तभी शाम के समय उनके एक सहयोगी हयात सिंह ने रेणी से आकर बताया, “सब गड़बड़ हो गया। मजदूर पेड़ों को काटने के लिए जंगल में चले गए हैं। गाँव में कोई पुरुष नहीं है। गोविंद सिंह रावत अकेले जंगल में जाने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं।”

अरण्यपाल और उनकी टीम अभी संस्था में ही थी। जब हयात सिंह के यह बताने पर कि वे सभी पिछले दिन जोशीमठ में ही थे तब चण्डी प्रसाद भट्ट को अपने साथ किये गए छल का पता चला। यह उनके लिए किसी सदमे से कम न था। उन्होंने संयत रहते हुए अधिकारियों से कुछ नहीं कहा। वे तुरंत रेणी जाना चाहते थे, लेकिन वहाँ के लिए बस दूसरे दिन सुबह ही मिल सकती थी।

चण्डी प्रसाद भट्ट, हयात सिंह के साथ दूसरे दिन प्रातः साढ़े दस बजे रेणी पहुँच गए। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सारे मजदूर, जिन्हें उस समय जंगल में होना चाहिए था, अपने माल-असबाब के साथ नीचे सड़क पर खड़े थे। जैसे ही उन्हें बताया गया कि महिला मंगल दल की अध्यक्षा गौरा देवी के नेतृत्व में गाँव की महिलाओं ने जंगल को कटने से बचा लिया है तो खुशी से उनकी आँखों में आँसू छलक पड़े।

उस दिन रेणी गाँव में मात्र सात लड़कियाँ और 21 महिलाएँ थीं। जब गायों को चराने गई एक लड़की ने अजनबियों को जंगल की ओर जाते देखा तो उसने दौड़कर यह बात महिला मंगल दल की अध्यक्षा गौरा देवी को बताई। गौरा देवी समझ गईं कि जंगल काटने वाले जंगल में पहुँच चुके हैं। गौरा देवी ने सड़क बनाने के लिए होने वाले वन विनाश को भी देखा था और उसके बाद लगातार आने वाली बाढ़ों और भूस्खलनों से हुए विनाश को भी। 22 वर्ष की आयु में पति को खोने के बाद गृहस्थी चलाने के संघर्ष के उन 28 वर्षों में वनों ने

भाई बनकर घास, लकड़ी, कंद-मूल-फल और सब्जी आदि से उनकी कितनी मदद की थी, इसका उन्हें भलीभाँति अहसास था।

एकाएक इतनी महिलाओं को अपनी ओर आते देखकर ठेकेदार के कारिंदे और वन विभाग के कर्मचारी एक क्षण के लिए चौंके जरूर, लेकिन निश्चिंत बने रहे। गौरा देवी ने उनके पास जाकर हाथ जोड़ते हुए कहा, "हमारे जंगल को मत काटो। हमारे मैतियों (मायके के स्वजनों) को मत काटो। ये हमें जीवनयापन के लिए घास, लकड़ी, सब्जी, फल, जड़ी-बूटी सब कुछ देते हैं। जंगल कटा तो पहाड़ हमारे गाँव पर आ गिरेंगे, बाढ़ें आएँगी और हमारे बगड़ों (नदी-तटों) को तहस-नहस कर देंगी।" गुमान से भरे कारिंदों के अभद्रतापूर्ण व्यवहार के बावजूद वे विनम्रतापूर्वक उन्हें समझाती रहीं कि गाँव में कोई पुरुष नहीं है। अभी वापस चले जाओ। पुरुषों के आने पर फैसला होगा।

रेणी चिपको आंदोलन

तभी शराब के नशे में चूर एक कर्मचारी ने गौरा देवी पर बंदूक तान दी। इसने विनम्रता से हाथ जोड़ रहीं गौरा देवी के जोश को बुलंदी पर पहुँचा दिया। वह अपनी आंगड़ी के बटन खोलते हुए चिल्लाकर बोलीं, "लो मारो बंदूक और काट ले जाओ हमारा मायका!" इस पर दूसरी महिलाएँ भी आगे आकर बोलीं, "हाँ, हमें भी मारो!" मजदूर घबरा गए। वे नीचे उतरने की तैयारी करने लगे। कारिंदे पुलिस का डर दिखाकर उन्हें डराने-धमकाने लगे, लेकिन गौरा देवी की अडिगता के आगे उनकी एक न चली। महिलाएँ मजदूरों के हथियारों को उठाकर और उन्हें अपने साथ लेकर नीचे उतरने लगीं। वापसी में उन्होंने भूस्खलन से टूटे पहाड़ पर बनी स्लैब की एक छोटी पुलिया भी उखाड़कर फेंक दी, ताकि मजदूर दुबारा जंगल में न जा सकें। वे नंदा देवी के जागर गीत गाते हुए रातभर रास्ते पर बैठकर पहरा देती रहीं। सुबह से लेकर रात तक अपनी गृहस्थी, ऊन से जुड़े काम-धंधों, खेती-बाड़ी और पशुपालन के अनथक श्रम के भार तले जुती रहने वाली दूरस्थ सीमांत क्षेत्र की इन आदिवासी महिलाओं ने गौरा देवी के नेतृत्व में असंभव को संभव करते हुए अपने जंगल को बचाकर चिपको आंदोलन की कीर्ति-पताका पूरे विश्व में फहरा दी।

रेणी की जीत से यह तथ्य भी स्थापित हुआ कि पहाड़ों में अपने दैनंदिन जीवन में वनों से अटूट रूप से जुड़ीं महिलाएँ ही जंगल की लड़ाई को निष्ठा के साथ लड़ सकती हैं। गौरा देवी की विजय ने सदियों के जीवन-संघर्षों से थकी-हारी पहाड़ की महिलाओं में नई चेतना भर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि चमोली जिले में ही महिलाओं ने गोपेश्वर, भ्यूंडार, डुंगरी पैंतोली, खल्ला आदि स्थानों में अपने गाँव के जंगल को बचाने के लिए सफल आंदोलन चलाए। इसके लिए उन्हें अधिकांश स्थानों पर गाँव के पुरुष समाज से भी लड़ना पड़ा, जिसके लिए उन्हें बाद तक भी परेशान किया जाता रहा। अंततः, उनके संघर्षों को मान्यता मिली और भारत सरकार ने गौरा देवी सहित चमोली जिले की 30 महिलाओं को 1986 में 'इंदिरा प्रियदर्शिनी वृक्षमित्र पुरस्कार' से सम्मानित किया।

गौरा देवी का जन्म सन् 1925 में लाता गाँव में हुआ था। उनका विवाह 11 वर्ष की आयु में हो गया था। उन्होंने कोई स्कूली शिक्षा नहीं ली थी। उनका निधन 04 जुलाई, 1991 को हुआ।

उत्तराखंड में हिमवंत पुत्री पार्वती को, जो यहाँ की लोक देवी हैं, 'नंदा' या 'गौरा' कहा जाता है। जागर गीतों में गौरा का मायका ऋषासो बताया गया है। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि ऋषासो रेणी के पास बहने वाली ऋषिगंगा के आस-पास रहा होगा। लाता गाँव में नंदा (गौरा) का पौराणिक मंदिर भी इस मान्यता की पुष्टि करता लगता है। तो क्या उस क्षेत्र के 2,451 पेड़ों को गौरा देवी नाम की महिला द्वारा बचाया जाना किसी संयोग की तरफ इशारा करता है? एक ऐसा संयोग, जिसने समयचक्र को घुमाकर पुरुषों को आंदोलन से अलग करते हुए हिमालय की इन भोली और सरल पुत्रियों के सौम्यतम प्रतिकार को जीत का मुकुट पहना दिया!

लोकगीतों के सामाजिक संदर्भ

'लोक' शब्द को यद्यपि 'फोक' (FOLK) का पर्याय माना गया है, किंतु सच तो यह है कि इसमें कुछ परंपरागत धारणाएँ अंतर्भूत हैं, जिसके कारण लोक और संस्कृति को एक ही भाव माना जा सकता है। 'फोकलोर' का अर्थ है—एक प्राचीन समाज की वाचिक परंपराओं, कलाओं और प्रचलित विश्वासों का समूह। इसके अंतर्गत नृत्य-गीत, जादू-टोना, कथा, पहेली, लोकोक्ति आदि हैं। लोकगीत संभवतः व्यक्ति विशेष द्वारा रचे गए, जिसका परिष्कार समुदाय द्वारा हुआ।

लोकगीतों का बीज हमारे प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। प्राच्य-साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख है, उन्हें 'लोकगीतों का पूर्व-प्रतिनिधि' कहा जा सकता है। पद्य या गीत के अर्थ में गाथा तथा उसे गाने वाले के अर्थ में 'गाथिन' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के मंत्रों में मिलता है। बहुत पहले किसी विशिष्ट राजा की सराहना में लोकगीत समाज में प्रचलित थे, वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य के एक पृथक अंग के रूप में जाने गए। गृह्य सूत्र में विवाह सीमंतोन्नयन तथा यज्ञादि के अवसर पर गाथाएँ गाई जाती थीं। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में भी गाथाओं का वर्णन मिलता है। गाथाओं का संबंध लोकगीतों से बहुत निकट जान पड़ता है।

राजेन्द्र परदेसी

जन्म : बबुरा, जिला भोजपुर, बिहार

शिक्षा : ए.एम.आई., डी.लिट्. (मानद)

प्रकाशन : चार कविता-संग्रह, चार कहानी-संग्रह, तीन निबंध-संग्रह, दो साक्षात्कार-संग्रह, एक हाइकु-संग्रह, एक लघुकथा-संग्रह प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 99568 40740

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम-जन्म के समय तथा श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण-जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजक गीत गाने का वर्णन मिलता है। संस्कृत साहित्य में चक्की पीसना, धान कूटना, ढेंकी चलाना, खेती निराना, चरखा कातना आदि अवसरों में झुंड बनाकर गीत गाने का उल्लेख हुआ है। 12वीं शताब्दी की एक कवयित्री, विज्जवन ने धान कूटने वाली स्त्रियों के गीत का बड़ा मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है—

विलासम सृणोल्लसन मुसललोलदोः कन्दली
परस्पर परिस्खलद् वलयनिः स्वनोट्बन्धराः
लसन्ति कलहुंकृति प्रसभकम्पितोर स्थल
त्रुटद्मयक संकुला कलभगण्डनी गीतय।

अर्थात स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ-साथ गीत भी गा रही हैं। मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ खन-खन कर रही हैं। उनके वक्ष-स्थल हिल रहे हैं, मीठी हुंकार की आवाज तथा चूड़ियों की खनक से मिलकर उनके गीत विचित्र आनंद पैदा कर रहे हैं।

लोकसाहित्य की समस्त विधाओं में लोकगीत की अनलंकृत सहज शोभा बरबस ही चित्त को हर लेती है। वैदिक सूक्तों में जैसे मनुष्य और देवता के बीच सामीप्य का भाव है, वैसी ही स्थिति लोकगीतों में भी है।

महात्मा गांधी ने कहा था कि वही काव्य और वही समाज चिरंजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे और आसानी से पचा सकें। अब यदि साहित्य को समूह के साथ विकसित होना है तो उसे लोकसमाज एवं लोकसाहित्य से जुड़ना होगा। वस्तुतः, साहित्य लोकगीतों से ही अनुप्राणित होकर सहज होता है और रस का सृजन करता है, क्योंकि लोकगीत अकृत्रिम एवं पूर्ण होते हैं।

महादेवी वर्मा के शब्दों में, सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष को गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर

देना ही गीत है और इस गीत में जब सहज चेतना जुड़ जाती है तो वह 'लोकगीत' बन जाता है। लोकगीत, गगनचुंबी हिमश्रेणियों के बीच में एक ऐसा सजल आलोकज्ज्वल मेघखंड है, जो न तो इनके टूट-टूटकर गिरने वाले शिलाखंडों से दबता है और न इन श्रेणियों की सीमाओं में आबद्ध ससीम बनता है प्रत्युत, उन चोटियों का शृंगार करता है और संगीत लहरी के प्रत्येक स्पंदन-कंपन के साथ उड़कर उस विशालता के कोने-कोने को मादकता के सागर प्रस्तुत करता है।

लोकगीतों का विस्तार कहाँ तक है, इसका अनुमान लगाना सहज नहीं है, किंतु सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परंपराएँ जीवित हैं। ये हृदय की गहराइयों से जन्मे हैं। श्रुति परंपरा से ये अपने विकास का मार्ग बनाते रहे हैं। अतः इनमें तर्क कम, भावना अधिक है। न इनमें छंदशास्त्र की लौह शृंखला है, न अलंकारों की बोझिलता। इनमें तो लोकमानस का स्वच्छ और पावन गंगा-जमुना जैसा प्रवाह है। लोकगीतों का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें सहजता, स्वाभाविकता एवं सरलता है। इनमें सुख-दुख, प्रेम और करुणा के विविध रंग हैं। कहीं पुत्र जन्म के अवसर पर हर्ष-उल्लास के स्वर गूँजते हैं, तो कहीं कन्या की विदाई या प्रियवियोग की बेला में करुणा के गीत मुखर होते हैं।

लोकगीतों में लोक का समस्त जीवन चित्रित है। शिशु के प्रथम क्रंदन से लेकर जीवन की अंतिम कड़ी तक के भावचित्र इनमें हैं। भाई से मिलने को व्याकुल बहन की व्यथा-कथा, स्त्रियों का आभूषण प्रेम, सास-ननद तथा सौत के अत्याचारों से पीड़ित स्त्री की मनोव्यथा, कृषक परिवार की विपन्नता, वीरों की शौर्यगाथा तथा मिलन-विरह के रंगारंग भाव इन गीतों में मिलते हैं। दूसरे शब्दों में, इन लोकगीतों में जीवन का शाश्वत सत्य झलकता है।

लोकगीत भले ही श्रुति परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हों, किंतु यह निर्विवाद सत्य है कि इनमें भाषा-भाव की समृद्धि किसी अन्य साहित्य से कम नहीं है। इनमें अलंकारों और रसों का सुंदर समन्वय देखा जा सकता है। ये सरस गीत तो पंक्ति-पंक्ति रस से सराबोर हैं। शृंगार के संयोग एवं वियोग, दोनों पक्षों का सुंदर चित्रण मिलता है। संयोग शृंगार के एक चित्र में प्रेम की पराकाष्ठा देखें—

होइतों मैं जल की मछरिया
जलहि बाचे रहि जइतों हो रामा
अहो रामा मोरा हरि अइते असननवा
चरन चूमि लेइती हो रामा।

लोकगीतों की करुणा तो प्रत्येक मन-प्राण को विचलित कर देती है। इन गीतों में मार्मिक और ध्वन्यात्मक व्यंजना की बहुलता है। एक विरहिणी नायिका अपने प्रिय के प्रति इस प्रकार भाव प्रकट करती है—

साजन तेरे हेत अंखिया तो नदिया भई
मन भयो बालू रेत गिर गिर परत कगार

लोकगीतों में भक्ति-भावना के पदों की भरमार है। निर्गुण पदों के अतिरिक्त राम, कृष्ण, शिव एवं देवी भगवती के स्वरूप और उनकी लीलाओं का भी चित्रण इन गीतों में पाया जाता है—

प्रात समय कौशिल्या रानी
अपनो लाला लगाने
देखो री एक बाला जोगी
द्वार मोरे आयो री।
सिंह पर एक कमल राजति
वाहि ऊपर भगवती माँ
शिव जोगी होके बइठे जंगल में

व्रत और त्योहार हमारी संस्कृति की आधारशिला हैं। इनमें हमारी परंपराओं का इतिहास और हमारी संस्कृति की विकास-गाथा है। किसी विशेष घटना को लोकमानस के हृदय पर स्थायी रूप से अंकित करने में ये त्योहार सहायक हैं। ये हमें कुछ समय के लिए आपसी भेदभाव भुलाकर प्रेम-रंग में रँग देते हैं। त्योहार हमें कर्तव्यों और धर्म की शिक्षा देते हैं।

स्त्रियों का व्रत के प्रति आग्रह होता है। व्रतों के माध्यम से वे अपने पति, पुत्र और भाई की मंगल-कामना करती हैं। एक गीत में ऐसा उल्लेख है कि तप और व्रत के कारण एक स्त्री को सुंदर पुत्र मिला।

ललना मोर पिया तप व्रत कीन त उन्ही के धरम गुना
भूलि रहे उँ एकादसिया हुअसिया के पारन
विधिक रहेउँ अवतार होरिल बड़ सुंदर

लोकगीत लोकसमूह द्वारा विशेष परिस्थितियों, स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। लोकगीत ही लोकजीवन और संस्कृति की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इनमें मनुष्य मात्र के पारिवारिक, जीवन का सामाजिक तथा भावात्मक चित्रण होता रहता है।

लोकगीतों में व्यावहारिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है, जैसे—काम के बोझ को हलका करना, अत्याचार का विरोध करना तथा मनोरंजन आदि। भिन्न-भिन्न स्थानों पर लोकगीतों का स्वरूप कुछ भले ही बदल जाए, किंतु वस्तुतः उनकी आत्मा एक ही होती है।

लोकगीतों और गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। जिस जनपद में जो गीत प्रचलित है, उनमें वहाँ के लोगों का रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार सजीव रूप में जीवित-चित्रित रहता है। लोकसंस्कृति इन गीतों में अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रतिबिंबित होती है। राजस्थान की लोकगाथाओं में वहाँ के बलिदानी वीरों की गाथा तथा क्षत्राणियों के गान-अभिमान का अधिक चित्रण है। बिहार की लोककथाओं में वीर कुँवर सिंह का नाम प्रमुखता से आता है। मैथिली लोकगीतों में मिथिला की सामाजिक प्रथाएँ विशेष चित्रित हैं। इसी तरह, अन्य प्रांतों के गीतों में वहाँ की परंपराओं का स्पष्ट चित्र मिलता है।

वृद्धावस्था-विमर्श के अग्रदूत : भिखारी ठाकुर

आजकल भारतीय भाषा-साहित्य में दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, स्त्री-विमर्श, किन्नर-विमर्श (ट्रांसजेंडर डिस्कोर्स) और वृद्धावस्था-विमर्श का प्रचलन है और उस पर साहित्यकार या शोधकर्तागण लगातार अपनी कलम चला रहे हैं।

सुप्रसिद्ध लेखिका रेखा सेठी की एक पुस्तक है, 'स्त्री-विमर्श : पहचान व द्वंद्व' (राजकमल, नई दिल्ली)। उसकी 'भूमिका' में लेखिका कहती हैं कि साहित्य की दुनिया में नब्बे के बाद से अस्मितावादी साहित्य का

डॉ. संतोष कुमार

जन्म : 04 मार्च, 1974, बेतिया, बिहार

शिक्षा : पी-एच.डी.

संप्रति : सहायक कुलसचिव (असिस्टेंट रजिस्ट्रार), दिल्ली टीचर्स यूनिवर्सिटी, दिल्ली सरकार, नई दिल्ली। 'भोजपुरी ज़िन्दगी' के संपादक।

प्रकाशन : एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित

सम्मान : भिखारी ठाकुर रंगमंडल प्रशिक्षण एवं शोध केंद्र व कला, संस्कृति और युवा विभाग द्वारा भोजपुरी कलाकार पद्मश्री। साहित्य सम्मान, 2021, भारतीय भोजपुरी समाज, नई दिल्ली। भारतरत्न डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम स्मृति इंडिया ग्रेस इंडिया लिटरेचर अवार्ड, 2018, नई दिल्ली जैसे कई सम्मान प्राप्त।

संपर्क : मोबाइल– 9868152874

ई-मेल– bhojpurijinigi@gmail.com

नया उभार नई दिशाओं की ओर संकेत करता है। स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी, सभी वर्गों ने अपनी अभिव्यक्ति को हाशिये से केंद्र में लाने के लिए सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

वैसे तो बहुत-से विमर्शकारों ने साहित्य में वृद्ध-विमर्श की चर्चा की है। यहाँ हम भोजपुरी साहित्य में इस विमर्श पर बात करेंगे। कहना न होगा कि भोजपुरी साहित्य में दलित-विमर्श मराठी या हिंदी साहित्य से पहले आया, जिसका एक उदाहरण है हीरा डोम की लिखी भोजपुरी कविता 'अछूत की शिकायत' और विक्रमा प्रसाद का उपन्यास 'भोर मुस्काइल'। विदित हो कि हीरा डोम की कविता, 'अछूत की शिकायत' 'सरस्वती' के सितंबर 1914 अंक में छपी थी। 'सरस्वती' पत्रिका के यशस्वी संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी थे।

इससे साबित होता है कि भारत की प्रत्येक भाषा में जिस तरह दलित-विमर्श और दलित-चेतना की चर्चा है, उसका शुरुआती चलन भोजपुरी साहित्य में देखने को मिलता है। हिंदी भाषा में 1980-90 के बाद से दलित-चेतना का साहित्य खुलकर सामने आने लगा। उसके पहले भोजपुरी साहित्य में दलित-चेतना का साहित्य प्रकाशित होना शुरू हो चुका था, चाहे वह पद्य साहित्य हो या गद्य साहित्य।

इस तरह भोजपुरी साहित्य में वृद्ध-विमर्श में बहुत पहले काम हुआ। भोजपुरी साहित्य के समर्थ लोककलाकार, लोकप्रिय रंगकर्मी, नवजागरण के संदेशवाहक, नारी-विमर्श, दलित-विमर्श के प्रमुख उद्घोषक और लोकसंगीत साधक भिखारी ठाकुर भोजपुरी साहित्य में वृद्ध-विमर्श के प्रथम विमर्शकर्ता हैं। वे अपने 12 लोकनाटकों में

अनेकानेक सामाजिक बुराइयों को हमारे सामने लेकर आए हैं, लेकिन उनके लिखे पद्यात्मक आलेख 'बुढ़शाला के बयान' की चर्चा यहाँ करना प्रासंगिक होगा, जो वृद्ध-विमर्श की बात कर रहा है।

आज के उत्तर-आधुनिक युग में लोगों की नजर हाशिये के समुदाय पर पड़ी है। स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक के साथ अब वृद्ध पर भी ध्यान केंद्रित किया जा रहा है, जिसके कारण वृद्धावस्था विमर्श उभरकर हमारे सामने आने लगा है।

"जैसा कि हम जानते हैं कि कोई रचना या रचनाकार तब तक प्रासंगिक होते हैं, जब तक उसकी रचनाओं में उठने वाली समस्या का निवारण नहीं हो जाता। भिखारी ठाकुर आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, क्योंकि उनके द्वारा उठायी गई समस्या का हल अब तक नहीं हो सका, बल्कि यह समस्या गाँव से होते हुए नगर और फिर महानगर तक पहुँच गई। वैसे, महानगरों में वृद्धाश्रम सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर खुलने लगे हैं। यह बतलाता है कि भिखारी ठाकुर एक युगद्रष्टा नाटककार थे। यह उद्धृत करना आवश्यक है कि भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों के माध्यम से जिस सामाजिक चेतना को संचारित करने की कोशिश की, उस चेतना के संचार की आज भी आवश्यकता है, क्योंकि इसी चेतना से इस समस्या का समाधान संभव है।"

फ्रांसीसी विदुषी सिमोन द बोउवार (09 जनवरी, 1908-14 अप्रैल, 1986) ने 1950 से वृद्धावस्था पर चिंतन-मनन करना शुरू कर दिया था। 1970 में प्रकाशित उनकी शोधपूर्ण कृति 'ला विएलेस्से' (फ्रेंच) इसका प्रमाण है। 'ला विएलेस्से' का अंग्रेजी अनुवाद, 'ओल्ड एज' (पैट्रिक ओ'ब्रायन) 1977 में प्रकाशित हुआ। इस कृति की चर्चा अपने संपादकीय में ऋषभदेव शर्मा कर रहे हैं कि 'यह कृति वस्तुतः सिमोन की भविष्योन्मुखी विश्वदृष्टि का प्रमाण है और वृद्धावस्था-विमर्श की गीता है।'

इधर, भिखारी ठाकुर (1887-1971) ने बिहार के भोजपुरी भाषी क्षेत्र में वृद्ध लोगों के लिए 'बुढ़शाला' (वृद्धाश्रम) की स्थापना की संकल्पना अपनी रचना के माध्यम से दी। विदित हो कि भिखारी ठाकुर के लेखन का कालखंड 1919 से 1965 (भिखारी रचनावली के संपादकीय पृष्ठ 6) रहा है, लेकिन इस समय-सीमा में कितनी समानता है कि सिमोन द बोउवार उसी कालखंड में फ्रेंच में 'ला विएलेस्से' लिख रही थीं और उसी अवधि में भोजपुरी में भिखारी ठाकुर 'बुढ़शाला के बयान' लिख रहे थे।

हमें याद करना चाहिए कि भिखारी ठाकुर का एक महत्वपूर्ण नाटक है—'गबरघिचोर'। इस नाटक को पढ़ने के बाद नाट्य कला आलोचकों ने इसकी तुलना जर्मनी के मशहूर नाटककार, रंगकर्मी और कवि बर्तोल्त ब्रेख्त लिखित नाटक 'द कॉकेशियन चॉक सर्किल' (खड़िया का घेरा) से की।

"गबरघिचोर के विषय के ट्रीटमेंट में विस्मयकारी समानता दिखती है, पर कथ्य जुदा है।" जैसा कि भिखारी ठाकुर पर शोध करने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और आलोचक डॉ. मुन्ना पांडे मानते हैं।

दलित चिंतक और आलोचक प्रो. हरि नारायण ठाकुर जी का कहना है कि "शुरू में भिखारी ठाकुर को अपनी नाच मंडली के कारण कड़े सामाजिक प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा, क्योंकि उनके नाटक और स्वाँग सामाजिक कुरीतियों और बुराइयों पर आधारित हैं। बाल विवाह, विधवा विवाह, गरीबी के कारण बेटी बेचना, छुआछूत, बेरोजगारी आदि स्त्री, दलित और पिछड़ों के जीवन की अनेक सामाजिक समस्याएँ थीं, जिन पर भिखारी ठाकुर गीत और नाटक लिखते और प्रदर्शित करते थे।"

'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' से प्रकाशित भिखारी ठाकुर रचनावली में संकलित 'भजन-कीर्तन-गीत-कविता' खंड में संगृहीत 'बुढ़शाला के बयान' के माध्यम से बूढ़े-बुजुर्गों की तकलीफ़, बाल-बच्चों द्वारा बुजुर्गों के नजरअंदाज करने और उनके साथ आए दिन होने वाले दुर्व्यवहार का मार्मिक वर्णन किया गया है। साथ ही, भिखारी ठाकुर जी ने अपने समय में ही बुजुर्गों के इस दुख को देखकर बुढ़शाला यानी वृद्धाश्रम खोलने का सुझाव दे दिया था। एक महान साहित्यकार का यही गुण है, जो सामाजिक समस्या को सबके सामने उठाता है और उसके निदान का भी सुझाव देता है, जिसका सुंदर उदाहरण है—लोकरंगकर्मी भिखारी ठाकुर लिखित 'बुढ़शाला के बयान'।

जैसा कि हम जानते हैं कि कोई रचना या रचनाकार तब तक प्रासंगिक होते हैं, जब तक उसकी रचनाओं में उठने वाली समस्या का निवारण नहीं हो जाता। भिखारी ठाकुर आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, क्योंकि उनके द्वारा उठायी गई समस्या का हल अब तक नहीं हो सका, बल्कि यह समस्या गाँव से होते हुए नगर और फिर महानगर तक पहुँच गई। वैसे, महानगरों में वृद्धाश्रम सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर खुलने लगे हैं। यह बतलाता है कि भिखारी ठाकुर एक युगद्रष्टा नाटककार थे। यह उद्धृत करना आवश्यक है कि भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों के माध्यम से जिस सामाजिक चेतना को संचारित करने की कोशिश की, उस चेतना के संचार की आज भी आवश्यकता है, क्योंकि इसी चेतना से इस समस्या का समाधान संभव है।

भिखारी ठाकुर को यह लगा कि मैं अपने नाटक कला के माध्यम से समाज में सुधार का काम कर सकता हूँ, जैसा कि बंगाल में राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद जैसे समाज-सुधारकों ने नवजागरण काल में किया।

समाज का हर सजग और समझदार इनसान उनके विचार से असहमत नहीं हो सकता। भिखारी ठाकुर के नाच के संदर्भ में व्यास मिश्र का विचार समीचीन है : "भिखारी ठाकुर का नाच शहराती लोगों को भले ही नहीं सुहाए, उसमें समूचा 'फोक', समूचा ग्रामीण परिवेश जीवंत हो उठता था। भिखारी ठाकुर ने नाच पार्टियों द्वारा प्रदर्शित परंपरागत लटकों-झटकों को नई दिशा दी। सामाजिक कुरीतियों से उपजे गहरे विषाद को नौटंकी शैली में जब वे मंच पर पेश करते, तो कई आँखों से गंगा-जमुना बहने लगती।"

एक कवि हमेशा युगद्रष्टा होता है। भिखारी ठाकुर की दूरदर्शिता का यह परिचायक है कि उन्होंने अपने समय में हो रहे सामाजिक मूल्यों के क्षरण और परिवार के भीतर टूट रही मर्यादा को भाँप लिया था, तभी तो वृद्धों की हालत, उनके साथ हो रहे दुर्व्यवहार व उनके हालात को देखते हुए वृद्धाश्रम की व्यवस्था के लिए जनसहयोग की बात की।

भिखारी रचनावली के अनुसार, "वर्तमान काल में परिवार बूढ़े माता-पिता या अन्य बूढ़ों को नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है, इसलिए लोककवि का दूरदृष्टिपरक निवेदन है :

"बुढ़शाला के रचना करीं। मइया के दुख जल्दी हरीं।
ना त टूटी माता के आस।
कहियो एक दिन होई तलास।
तबहीं खूब समुझब तोता। रोअब परदा भीतर अलोता।
कहत 'भिखारी' दोउ कर जोर। समुझ परी तब टपकी लोर।"

'बुढ़शाला के बयान' में भिखारी ठाकुर कहते हैं कि "अब देखल जाए कि गाय वास्ते गौशाला खुल गइल, गरीब वास्ते धर्मशाला, गँवार वास्ते पाठशाला बड़ नीक काम भइल। उहाँ के माँग बा कि बूढ़ खातिर बुढ़शाला खुले के चाहीं।"

परिवार में बूढ़े माँ-बाप के प्रति जवान बेटा-बहू का नजरिया बदलता जा रहा है। परिवार न्यूक्लियर होता जा रहा है। इस बदलते परिवार के स्वरूप को भिखारी ठाकुर ने बेहद करीब से महसूस किया कि कैसे परिवार में बुजुर्ग माता-पिता के प्रति उपेक्षा भाव बढ़ता जा रहा है। उनको उनकी ही संतान न तो समय से खाना देती है, न समय से दवा, न उनके स्वास्थ्य के प्रति ध्यान, न ही उनके प्रति कोई संवेदना। पुत्र और बहू उस बूढ़े माँ-बाप को 'कुत्ता-बिल्ली' कहते हैं, जबकि उन्हीं बुजुर्ग माँ-बाप ने कभी अपने बेटे की खुशी के लिए महाजन से ऋण लेकर उनकी परवरिश की। आज वही बेटा उनको इतना दुख दे रहा कि बाप मुँह छिपाकर दरवाजे के साथ रखे खटिया पर पड़ा रोता रहता है, जबकि सच यह है कि बाप की पीठ धूप में और माँ का पेट चूल्हा के आगे जलता है, तब एक बच्चा रोटी पाता है, लेकिन बच्चा बड़ा होकर बुढ़ापे का जब सहारा नहीं बनता, तब सोचा जा सकता है कि उन बुजुर्गों की जिंदगी पर क्या गुजरती होगी? वृद्ध लोग अपने अनुभव से कहते हैं कि जब बच्चों को यह समझ आएगा तब वे तड़प जाएँगे, तब कोई न होगा उनके आँसू को पोंछने वाला—

"समुझ परी कहिया, लोर टपकी तहिया।
लोर टपकी कहिया, बुढापा आई तहिया।"

गाँव में जवान बेटा शेखी बघारने में, दिखावा करने में, मौज उड़ाने में, अपनी सुख-सुविधा जुटाने में हज़ारों-लाखों खर्च कर देते हैं, लेकिन अपने माँ-बाप की सेवा में दुबले होते जा रहे हैं। इस पर भिखारी ठाकुर कहते हैं कि—

"उपरे से चिकन बा, चमवा के छाजा
तीन दिन का सेखी में, उड़ावत बानी मजा
बूढ़ा-बूढ़ी के दुख भइल बा, लागत नइखे लाजा।
बाबू-भइया एकमत होखे सब मिलि के समाजा
एह अरजी पर मरजी करीं, मानवाँ के ताज़ा
महाबीर के नाम सुमिर लीं, जेह में बाजी बाजा
बुढ़शाला बनवाई ना त होत बा अकाजा
बाबू सब केहू के परत बानी पाँव, ह भिखारी ठाकुर नाँव।"

शहरी परिवेश में सीनियर सिटीजन हाउस, ओल्ड एज होम आदि का आज जो प्रचलन है, उसमें कुछ में पारिवारिक मजबूरियाँ हैं तो कुछ में बुजुर्ग स्वेच्छा से भी जा रहे हैं।

आज दिवस या डे (Day) परंपरा वाले नगर-महानगर में बुजुर्गों के लिए 'अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस' या 'इंटरनेशनल डे फॉर ओल्ड पर्सन्स' 01 अक्तूबर को तय कर दिया गया है। इसी तारीख को बुजुर्गों की चिंता की जाती है, लेकिन गाँव में पारिवारिक अवमूल्यन को भिखारी ठाकुर ने जितनी संजीदगी से उठाया है, उसका मुख्य कारण युवा पीढ़ी का आज बुजुर्गों के लिए संवेदनहीनता है।

'बुढ़शाला के बयान' में भिखारी ठाकुर बड़ी ही मार्मिक ढंग से उस बूढ़ी माँ की बात लिखते हैं, जो कँपकपाती आवाज में कहती हैं—

"बुढ़शाला के कहीं कहानी, तेही के जानी करन समदानी।
सरवन करीं यह अमृत बाता, तेकरे लागी राम से नाता।

पाव भर में कइलस बाईं, नव मास तहाँ रखली माई।
करनी के फल कहिया मिली, मइया भइली कुत्ता तर के बिल्ली।
मइया के दुख भइल अपार, कहला से ना पाइब पार।
बुढ़शाला के रचना करीं। मइया के दुख जल्दी हरीं।"

सच में, भिखारी ठाकुर से बुजुर्ग माँ की उपेक्षा नहीं देखी जाती। वे अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति से व्यष्टि से बढ़कर समष्टि के दुख को व्यक्त कर रहे हैं और उपाय के रूप में बुढ़शाला (ओल्ड एज होम) के बनाए जाने की जरूरत पर बल दे रहे हैं। एक माँ की इससे अधिक पीड़ा क्या हो सकती है कि उसकी अपनी संतान, जिसे उसने अपने गर्भ में नौ महीने रखा, हर दुख-दर्द सहा, पाल-पोसकर बड़ा किया, लेकिन उसकी वह औलाद सहारा नहीं बन सकी और आज इतनी तकलीफ दे रही है कि उसे शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल है। यह थी भिखारी ठाकुर की लेखनी और चिंतनधारा, जो समस्या को उठाते भी थे और उसका निदान भी सुझाते थे।

भिखारी ठाकुर कहते हैं कि युवावस्था में किसी को यह आभास नहीं होता कि उसे भी बूढ़ा होना है और जिन विषम परिस्थितियों का सामना आज ये बूढ़े माँ-बाप कर रहे हैं, वही स्थिति उनके सामने भी आ सकती है। लोककवि भिखारी तभी तो इस बात की वकालत कर रहे हैं कि हर गाँव में एक बुढ़शाला खुलना चाहिए, जिसे गाँव के लोग खुद चंदा देकर बनाएँ, जो गाँव के बाहर नदी के किनारे बने। इस बुढ़शाला के संचालन का भार गाँव के लोग सामूहिक रूप से करें।

भिखारी ठाकुर के इस विचार को हिंदी आलोचक भगवान सिंह द्वारा लिखित 'साहित्य में वृद्ध-विमर्श' (जनसत्ता के 09 सितंबर, 2018) आलेख से जोड़ना आवश्यक है। वे लिखते हैं—

'वृद्धावस्था की बात करने पर अकसर प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक अनातोले फ्रांस का यह कथन याद आता है—"काश! बुढ़ापे के बाद जवानी आती!" अनातोले का यह कथन बड़ा ही सांकेतिक है। जवानी वह शारीरिक अवस्था है, जो जोश, ऊर्जा, शौर्य से ओत-प्रोत होती है, जिसका उपयोग करते हुए हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से जीवन-यात्रा तय करता है और इस क्रम में वह बुढ़ापे तक पहुँचता है। बुढ़ापे में जवानी वाली ऊर्जा शक्ति तो नहीं रह जाती, रह जाता है तो केवल विविध अनुभवों का भंडार। इन अनुभवों के आलोक में व्यक्ति को जवानी के अनुभव रहित जोश में किये गए अपने कई गलत निर्णयों और कार्यों का अहसास होता है, तो वह अनुताप की आँच में तपते हुए यह सोचता है कि अगर उसे बुढ़ापे में जवानी जैसी ताकत और स्फूर्ति मिल जाए तो वह पहले से बेहतर व श्रेयस्कर कार्य कर सकता है, यही आशय है अनातोले फ्रांस के इस कथन का।

एक लोकरंगकर्मी की चिंतन-दृष्टि का लोहा मानना चाहिए कि समान बात दुनिया के दूसरे कोने में एक फ्रांसीसी विद्वान भी कह रहे हैं। भिखारी ठाकुर जी के अनुसार, 'वृद्ध किसी भी धर्म का हो, सबका दुख समान रूप से ही दिखता है।' मसलन, निम्नलिखित पंक्ति को देखना जरूरी है—

हिंदू-मुसलमान, हमरा कहला पर दीं कान।
नाहीं त होत बा बूढ़ के अपमान।
होत बाटे बूढ़ के अपमान हमरे भाई
बच्चापन से जेकरा के तूँ कहत अइल माई
तेकरा खातिर अब काहे तूं हो गइल कसाई
कहे 'भिखारी' अबहीं तूँ बुढ़शाला द बनवाई
ना त होत बाटे बुढ़ के अपमान।

इस मार्मिक निवेदन के मार्फत लोकरंगकर्मी भिखारी ठाकुर बुजुर्गों के बाल-बच्चों से निवेदन करते हैं कि यदि बुजुर्गों का अपमान नहीं करना है तो कम-से-कम एक बुढ़शाला बना दो।

'बुढ़शाला के बयान' का साहित्यिक क्षेत्र में मूल्यांकन नहीं हुआ है। अब वह समय आ गया है कि जब साहित्य में 'ओल्ड एज पीपल्स' पर विमर्श शुरू हो गया तो वृहद स्तर पर इस रचना के ऊपर काम होने की गुंजाइश दिखाई दे रही है।

राजा राममोहन राय
नवजागरण के प्राणपुरुष

'नवजागरण' का अर्थ है, अतीत की सीख को पुनः जागृत करना, वर्तमान परिवेश में समझना और भविष्य को नया रूप देने के लिए उसका उपयोग करना। यह एक नई अंतर्दृष्टि है, समाज में मनुष्य की भूमिका की एक नई चेतना है। बंगाल 1774 से नवजागरण के विभिन्न चरणों से गुजर चुका है और 1800 से 1830 तक की अवधि राममोहन राय को सौंपी जा सकती है, जो एकमात्र भारतीय थे, जिन्होंने अपना जीवन पूरी तरह से सामाजिक कार्यों और उच्च विचारों के लिए समर्पित कर दिया था। वह एकमात्र बंगाली भारतीय थे, जिन्होंने प्राचीन भारत के इतिहास और विचारों, भारतीय शिलालेखों और बीजगणित, त्रिकोणमिति और खगोल विज्ञान के बारे में पश्चिमी विद्वानों के अध्ययन में नई संभावनाएँ देखीं। उनके अनुवाद कार्यों ने प्राचीन काल के

डॉ. नम्रता कोठारी

शिक्षा : एम.ए. (डबल),
पी-एच.डी., पोस्ट-डॉक्टरेट

संप्रति : वर्तमान में, दक्षिण कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज में राजनीति विज्ञान विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के रूप में कार्यरत। वह राजनीतिक विश्लेषक के रूप में राष्ट्रीय टीवी चैनलों में सहभागिता करती हैं।

प्रकाशन : चार पुस्तकें प्रकाशित

संपर्क : मोबाइल– 9883405857

हिंदू विचारों की मूल शुद्धता को उजागर किया और बताया कि कैसे सरल तथा तर्कसंगत प्रथाओं और मान्यताओं को प्राप्त किया जा सकता है और समाज में नए विचारों को लाने और बंद हिंदू समाज को फिर से खोलने के लिए तर्कहीन प्रथाओं को परिष्कृत और नया रूप दिया जा सकता है। राममोहन राय ने वेदांत को बाँग्ला के साथ-साथ हिंदी और अंग्रेजी में भी प्रकाशित करने में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया। वे मातृभाषा के माध्यम से बंगाल के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के पक्षधर थे।

राममोहन राय सांस्कृतिक उत्थान का स्वप्न देखते थे। वे अपने लोगों को उच्च नैतिक और धार्मिक स्तर पर ऊपर उठाना चाहते थे। उनके लेखन और आत्मीय सभा के विचार-विमर्श भारत को उसकी भविष्य की संभावनाओं के प्रति जागृत करने के लिए थे। लेखों के माध्यम से उनके विचार यूरोप और अमेरिका के लोगों तक पहुँचे और उन्होंने विचारशील लोगों में कुछ हद तक उत्साह पैदा किया।

राममोहन राय के धार्मिक और सामाजिक सुधार कार्यक्रम ने उन्हें राजनीतिक सुधार को भी अपनाने के लिए प्रेरित किया। मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों अर्थात जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता, संपत्ति के साथ-साथ बोलने, राय, विवेक और संघ की स्वतंत्रता के अधिकार पर उनके जोर ने उन्हें भारतीय राष्ट्र के गठन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान पर रखा। रवींद्रनाथ टैगोर ने ठीक ही कहा था, "राजा राममोहन राय ने भारत में आधुनिक युग का उद्घाटन किया।" अपने अध्ययन के माध्यम से राममोहन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत के लोगों की कई बुराइयाँ जाति, पंथ और धार्मिक कुप्रथाओं के प्रसार जैसी घिसी-पिटी सामाजिक दरारों के कारण हैं।

राममोहन राय ने महसूस किया कि बंगाल में पूर्ण जीवन के लिए रूढ़िवाद की बेड़ियों को हटाने के लिए एक आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है, इसलिए उन्होंने धर्मग्रंथों के अनुवाद और आधुनिक विचार देने वाले ग्रंथों के लेखन के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक उत्थान का अभियान आरंभ कर दिया। अपने सेवा वर्षों के दौरान, उन्होंने सभी प्रकार के भ्रष्टाचार, कुप्रथाएँ और बेकार सामाजिक समारोहों पर फिजूलखर्ची देखी। वे अपने परिवार में सती की कुप्रथा

“राममोहन राय एक सच्चे राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने देश की प्रगति में योगदान दिया। राष्ट्रवाद के मूल सिद्धांतों को राष्ट्र की पिछली उपलब्धियों पर सच्ची शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जो युग की तत्काल आवश्यकता के साथ मिलकर, इस राष्ट्रवाद के स्वस्थ विकास को बनाए रख सकता है और बढ़ावा दे सकता है। राममोहन राय का राष्ट्रवाद उस शिक्षा पर आधारित था, जो चरित्र में राष्ट्रीय और साज-सज्जा में पवित्र थी। इसने न केवल देश के अधिकारों और विशेषाधिकारों पर जोर दिया, बल्कि लोगों को इस बात से भी पूरी तरह अवगत कराया कि देश के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए क्या कदम उठाया जा सकता है।”

से भी आहत थे। वे बहुआयामी गतिविधियों में लगे हुए थे, विशेष रूप से उपनिषद् अध्ययन, पवित्र ग्रंथों की आंतरिक भावना को समझने और हिंदू धर्म की अनिवार्यताओं को उसके प्राचीन रूप में आत्मसात करने की तैयारी की प्रक्रिया में लगे हुए थे। उन्होंने महसूस किया कि हिंदू धर्म के लक्ष्यों और आदर्शों को जीवन के उच्चतम मूल्यों के प्रति गहरे लगाव के साथ-साथ सीधे दृष्टिकोण से ही प्राप्त किया जा सकता है। उनका मानना था कि भारत के लोगों को न केवल वेदांत की आवश्यक शिक्षाओं को, बल्कि ईसाई और मुस्लिम शिक्षाओं के बारे में भी जानना चाहिए।

राममोहन राय एक सच्चे राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने देश की प्रगति में योगदान दिया। राष्ट्रवाद के मूल सिद्धांतों को राष्ट्र की पिछली उपलब्धियों पर सच्ची शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जो युग की तत्काल आवश्यकता के साथ मिलकर, इस राष्ट्रवाद के स्वस्थ विकास को बनाए रख सकता है और बढ़ावा दे सकता है। राममोहन राय का राष्ट्रवाद उस शिक्षा पर आधारित था, जो चरित्र में राष्ट्रीय और साज-सज्जा में पवित्र थी। इसने न केवल देश के अधिकारों और विशेषाधिकारों पर जोर दिया, बल्कि लोगों को इस बात से भी पूरी तरह अवगत कराया कि देश के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए क्या कदम उठाया जा सकता है।

राममोहन राय जानते थे कि किसी भी राजनीतिक उन्नति के लिए भारतीय समाज का सर्वांगीण कल्याण पहली शर्त है; दूसरे शब्दों में, सबसे पहले जाति-प्रथा, बहुविवाह, कुलीनवाद आदि को दूर किया जाना चाहिए और अन्य राष्ट्रों के साथ भाईचारापूर्ण संबंध स्थापित किए जाने चाहिए। यदि इन उद्देश्यों को गंभीरता से मानवतावाद के व्यापक सिद्धांत पर पूरी ईमानदारी से आगे बढ़ाया जाए, तो राष्ट्रवाद और सर्वदेशीयवाद के बीच के रास्ते में शायद ही कोई बाधा हो सकती है। सर्वदेशीयवाद मन का एक दृष्टिकोण है, जो दूसरे देशों को मित्रता और सम्मान की दृष्टि से देखता है। यह केवल अंधराष्ट्रवाद ही है, जो उदारवाद या अंतरराष्ट्रीयवाद के रास्ते में खड़ा है।

यह स्पष्ट है कि राममोहन राय की राष्ट्रवाद की अवधारणा अपने धर्म या किसी भी धर्म की निंदा करने से बहुत दूर थी, बल्कि जहाँ दोष दिखाई देते थे, उन्हें सुधारना था। यह उनकी राष्ट्रवाद की भावना ही थी, जिसने उन्हें हिंदू धर्म और हिंदू जीवन-शैली की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया, हालाँकि वह हर समय दोषों को दूर करने के लिए लड़ते रहे।

समकालीन आर्थिक समस्याओं पर राममोहन राय की सोच आर्थिक विकृतियों और व्यापक गरीबी के परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण की रणनीति के इर्द-गिर्द केंद्रित थी, जो सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के साथ-साथ प्रशासनिक व्यवस्था की खामियों के परिणाम भी थे। तर्कसंगत आधार पर विशिष्ट शिकायतों को दूर करने के लिए संघर्ष करते समय, राममोहन राय ने आर्थिक प्रगति की अपेक्षित स्थितियों—आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक उपयुक्त आर्थिक बुनियादी ढाँचे के व्यापक परिप्रेक्ष्य को कभी नज़रअंदाज़ नहीं किया।

राममोहन राय ने फ्री प्रेस के माध्यम से शिकायतों के प्रचार-प्रसार के पक्ष में दृढ़ता से बात की थी। राममोहन राय ने बताया कि देसी अखबारों ने इस देश, इंग्लैंड और दुनिया के अन्य हिस्सों में जो कुछ भी हो रहा था, उसकी बहुमूल्य जानकारी लोगों के सामने रखकर, उनकी बौद्धिक उन्नति में योगदान दिया था। उन्होंने मूल निवासियों के बीच 'स्वतंत्र चर्चा की शुरुआत' की और उन्हें ज्ञान के बारे में सोचने और पूछताछ करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार, उन्होंने 'ज्ञान के प्रसार और नैतिक शिक्षा के प्रसार' के लिए एक एजेंट के रूप में प्रभावी ढंग से कार्य किया।

राममोहन राय ने सरकार और लोगों के बीच के बंधन के रूप में 'वफादारी और लगाव' पर विशेष जोर दिया। सरकार को इस तरह व्यवहार करना चाहिए कि लोग इसे 'विजेताओं की संस्था के रूप में नहीं, बल्कि उद्धारकर्ताओं के रूप में मानें'। वे सत्ता, न्यायिक, विधायी और कार्यपालिका के पृथक्करण के दृढ़ता से पक्ष में थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि न्यायाधीश को विधायी शक्तियों का अहंकार नहीं करना चाहिए। उन्होंने कहा था कि सरकार कानून को अपने हाथों में लेकर विधायी और न्यायिक शक्तियों का संयोजन करेगी तो नागरिक स्वतंत्रता का विनाश होगा।

राममोहन राय के अनुसार, एक अच्छी सरकार को सतर्क रहना चाहिए। शाश्वत सतर्कता न केवल स्वतंत्रता की, बल्कि अच्छी सरकार की भी कीमत है। राममोहन राय के समय में भारत बौद्धिक सुस्ती से मुक्ति के दौर से गुजर रहा था। वे उनलोगों में से थे, जिनकी राय थी कि जब तक देश के लोग अपनी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के प्रति पूरी तरह जागरूक नहीं हो जाते, तब तक भारत के लिए कोई प्रगति हासिल करना संभव नहीं है। शास्त्रों के अपने अनुवादों में राममोहन राय ने अपने देशवासियों को हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति के उच्चतम आदर्शों के प्रति जागरूक करने की पूरी कोशिश की, लेकिन उन्हें लगा कि पश्चिमी विचारों के सर्वोत्तम विचारों के संपर्क में आए बिना, उनके देशवासियों को उनके बौद्धिक बेहोशी से नहीं निकाला जा सकता। उनका यह भी मानना था कि पश्चिम की उदार संस्थाओं को देश में लाया जाना चाहिए। इसीलिए उन्होंने प्रबुद्ध यूरोपीय लोगों को भारत में बसाने की वकालत की। परिणामस्वरूप, उन्होंने 'पूर्व की सीखी हुई भाषाओं से अनुवाद' और 'विदेशी प्रकाशनों से साहित्यिक बुद्धिमत्ता' के प्रसार द्वारा अपने देशवासियों को जागरूक करने के प्रेस के प्रयासों का अनुमोदन किया।

इस तरह, राममोहन राय विश्व-पुष्टि के दर्शन पर पहुँचे। उन्होंने लोक-श्रेया-मानवता की सेवा के सिद्धांत पर आधारित सामाजिक नैतिकता की एक प्रणाली तैयार की। उन्होंने अर्थशास्त्र और राजनीति, दोनों के तर्कसंगत नियामक सिद्धांत और एक आदर्श राज्य बनाने के साधन के रूप में धर्म की भूमिका पर भी जोर दिया, लेकिन जबकि धर्म का अपना उचित क्षेत्र है, राजनीतिक अर्थव्यवस्था की समस्याओं को समाधान की उनकी प्राकृतिक और तर्कसंगत रेखाओं के साथ प्रासंगिक तरीकों से हल किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि राज्य को अपनी वित्तीय और राजनीतिक समस्याओं को राजनीति और सरकार के कानूनों के अनुसार हल करना चाहिए।

अकेले पश्चिमी विचार के प्रभाव ने राममोहन राय के तर्कसंगत सामाजिक दर्शन (उनके मूल राजनीतिक दर्शन सहित) को आकार नहीं दिया। बाद में वे उपनिषदों और मीमांसा दर्शन, विशेष रूप से पूर्व मीमांसा के अध्ययन से बहुत प्रभावित हुए, जिसने उनके सामाजिक दर्शन को प्रभावित किया। अपने सबसे बोधगम्य निबंध, 'राममोहन : द यूनिवर्सल मैन' में प्रख्यात भारतीय विद्वान, ब्रजेंद्रनाथ सील कहते हैं, 'ऐसा लगता है कि राममोहन ने तर्कवादियों और स्वतंत्र विचारकों, निश्चित रूप से मुजाहिदीनों, सूफियों और मुताज़िला के लेखन का अध्ययन किया है और शायद ह्यूम, वॉल्टेयर और वोल्नी की अटकलों का भी अध्ययन किया है।' लॉक और ह्यूम का प्रभाव अंधविश्वास और विशेष रूप से इसके अंतर्निहित मनोवैज्ञानिक कारणों के उनके विश्लेषण में स्पष्ट था, लेकिन सील ने इस तथ्य पर बहुत सही ढंग से जोर दिया कि राममोहन राय ने अपनी बुद्धिवादी प्रेरणा का एक बड़ा हिस्सा दर्शनों, विशेषकर पूर्व मीमांसा से प्राप्त किया।

इस प्रकार, राममोहन राय ने स्पष्ट रूप से इंद्रियों, मन और बुद्धि और अनुभवजन्य अनुभव के माध्यम से प्राप्त ज्ञान के आधार पर तर्कसंगत रास्ता देखा। उन्होंने प्रकृति की ओर, वस्तुनिष्ठ अस्तित्व और वस्तुनिष्ठ कानूनों की ओर वापसी का एक आंदोलन शुरू किया, जिसकी भावना मध्ययुगीन व्यक्तिपरक आदर्शवाद के साथ हमारी व्यस्तता में सदियों से खो गई थी। उन्होंने सहज ही पहचान लिया कि यह भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक था। राममोहन राय के लेखन ने वही उद्देश्य पूरा किया, जो बेकनियन दर्शन ने एक समय में यूरोप में किया था। उन्होंने मध्ययुगीन प्रकार के व्यक्तिपरक आदर्शवाद से बहने वाली मूर्तिपूजा के खिलाफ, एक सामान्य सामाजिक प्रथा के रूप में तपस्या के खिलाफ संदेश दिया, जबकि उन्होंने मानवीय इच्छाओं, संवेदनाओं और प्रवृत्तियों की पवित्रता की वकालत की। उन्होंने यह कहने पर जोर दिया कि उन्हें दैवीय कानूनों द्वारा विनियमित किया जाना चाहिए, जैसा कि समाज के कानूनों के माध्यम से प्रकट होता है।

राममोहन राय के बुद्धिवाद की प्रजाति की पहचान 18वीं शताब्दी के फ्रांसीसी बुद्धिवाद से नहीं की जा सकती, जिसने उनकी पीढ़ी के बाद आने वाली शिक्षित भारतीयों की पीढ़ी में बौद्धिक और सामाजिक उत्तेजना पैदा की। यह धर्म के प्रति गहरी मानवतावादी चिंता से जुड़ा हुआ था। राममोहन राय का मानना था कि धर्म (अपनी मानवतावादी सामग्री में) एक सामाजिक आवश्यकता है, क्योंकि यह मानवीय संबंधों, मानवीय आर्थिक और 'प्राकृतिक स्वतंत्रता' की पवित्रता पर जोर देता है, लेकिन भौतिकवादी सुखवाद, आध्यात्मिकता से प्राप्त मानवतावादी नैतिकता से रहित। उन्होंने पूर्वी संस्कृति की भावना और पश्चिमी संस्कृति के लोकाचार के बीच एक संश्लेषण की माँग की। यहाँ तक कि उन्होंने भौतिकवाद और पूर्ण आदर्शवाद, दोनों की अतिशयोक्ति से परहेज किया। राममोहन राय की प्रतिभा इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने पश्चिमी शिक्षा के वास्तविक प्रभाव और उसके परिणामस्वरूप संस्कृतियों के टकराव से पहले पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों के टकराव को खत्म करने की आवश्यकता को महसूस किया था।

रवींद्रनाथ टैगोर ने राममोहन राय की महानता को ठीक ढंग से अभिव्यक्त किया है, "वे इस सदी के एक महान पथप्रदर्शक हैं, जिन्होंने हर कदम पर हमारी प्रगति को बाधित करने वाली भारी बाधाओं को दूर किया है और हमें मानवता के विश्वव्यापी सहयोग के वर्तमान युग में प्रवेश कराया है।" 19वीं सदी में उनकी विचार जागृति ने बंगाल के साथ-साथ पूरे भारत में नए क्षितिज खोले। इस जागृति को 'नवजागरण' कहा जाता है। अधिकांश विद्वानों के लिए राममोहन राय का नाम नवजागरण का पर्याय बन गया है। वे नवजागरण के प्राणपुरुष हैं।

अनुवाद : **रंजू सिंह**

मेस अयनाक
भारत को पुकारते अवशेष

"शहाबुद्दीन! पहचानो इसे!! यह तुम्हारी ही आबरू..."

फिल्म 'पाकीज़ा' में वरिष्ठ अभिनेत्री वीना की ओजस्वी ललकार अनजाने मेरे हृदय में गूँज उठी, जब मैंने प्राचीन बौद्ध नगर 'मेस अयनाक' के विषय में पढ़ा। मुझे लगा, मैं अपने पिछले जन्म में भटक रही हूँ। यह अकूत धरोहर हमारी है और आज जाने किन-किन हाथों में पड़कर कभी लुट रही है, तो कभी सिमट रही है।

भारतीय संस्कृति कहाँ-कहाँ उपेक्षित बिखरी पड़ी है? कितना अमूल्य खजाना हम छोड़ आए?

हमारे धर्मग्रंथ इस तथ्य के साक्षी हैं कि ईसा-पूर्व भारत की सीमा बाह्लीक तक थी। मगध-द्वारावती मार्ग पर निरंतर व्यापारिक

कादम्बरी मेहरा

शिक्षा : अंग्रेजी में स्नातकोत्तर

संप्रति : सरे, यू.के. में निवास करते हुए स्वतंत्र लेखन। सन् 1977 में लंदन से पी.जी.सी.ई. करने के बाद तीस सालों तक लंदन के विभिन्न स्कूलों में मुख्य धारा में अध्यापन किया।

प्रकाशन : पाँच कहानी-संग्रह, एक उपन्यास, चाय पर एक शोध पुस्तक, एक रहस्य कथा तथा स्मरण समेत लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं।

सम्मान : भारतेंदु हरिश्चंद्र सम्मान जैसे कई प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त।

यातायात होता था, जो मध्य एशिया में चीन के रेशम-पथ से जा मिलता था। आज की 'ग्रैंड ट्रंक रोड', जो अब कोलकता से पेशावर तक जाती है, इसी भव्य राजपथ का आधुनिक स्वरूप है। यह बात और है कि अनेक शासकों ने इसका समय-समय पर पुनरूद्धार किया। यह राजपथ सिंधुघाटी सभ्यता से पूर्व का है। अनेक उदाहरण पुरातत्व अन्वेषण से प्राप्त हुए हैं, जो प्रमाण हैं कि गांधार और पुरुषपुर, मूलस्थान और मेहरगढ़ से धातुओं और जवाहरातों का व्यापार श्रीलंका तक होता था।

आज का अफगानिस्तान बौद्ध धर्म का तत्कालीन एक प्रसिद्ध केंद्र था। कुषाणकाल में कनिष्क ने अनेक धर्मों का आदर किया और महान साम्राज्य की स्थापना की, जिसकी सीमाएँ गांधार से लगाकर पश्चिमी बंगाल को छूती थीं। यह केवल मौखिक इतिहास नहीं है, जैसा कि 'मेस अयनाक' की खुदाई से सिद्ध हो चुका है।

काबुल से करीब 30 मील दक्षिण की ओर अगर मोटर से जाएँ तो गाड़ी एक कच्ची सड़क पर धचके खाती आगे बढ़ती है। एक तीखा मोड़ बाईं ओर मुड़ते ही एकदम सूखा प्रदेश शुरू हो जाता है। यहाँ सड़क के बजाय जो रास्ता मिलता है, वह किसी सूखी नदी का पाट है। यह रास्ता एक सूखी निर्जन वादी में खुलता है। इस प्रदेश पर तालिबान और अन्य क्रूर आतंकवादी समूहों का अधिकार है। अतः रास्ते में बमबारी से अनेक टूटे-फूटे घर और उजड़े हुए गाँव आदि मिलेंगे। हरियाली का नामोनिशान तक नहीं। वादी की ज़मीन सुरागों और क्षत-विक्षत इमारतों से छितरी हुई है। इन्हीं के बीच दूर-दूर तक एक अति प्राचीन दीवार के खंडहर बिखरे हुए हैं, जो हाल ही में खुदाई करके अनावृत किये गए हैं।

यह गांधार क्षेत्र है। यहाँ अनेक संस्कृतियों का समावेशन होता था। आधुनिक काल में यहाँ सूखा और गरीबी का

साम्राज्य है। अनेक बार वर्षाकाल में बाबा वली पर्वत की ढलानों पर नीले, बैंगनी व हरे रंग का कीचड़ बहकर आता था। अनपढ़ गरीब इसका कारण नहीं जानते थे। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ खुदाई में एक कंकाल मिला, जिसकी हड्डियाँ हरी-नीली हो गई थीं। परीक्षण से पता चला

“धर्मांध क्रूर इस्लामी शक्तियों के रहते विद्वानों को भय है कि यह नगर यदि चीन के हाथों नहीं तो लुटेरों के हाथ जरूर बरबाद हो जाएगा और यह अमूल्य खजाना विज्ञान व मानवता के हाथ नहीं आ पाएगा। अभी ही अनेक नमूने नष्ट हो गए हैं या जान-बूझकर कर दिये गए हैं। अनेक चोरी से तस्करों के हाथ पड़ गए हैं। चारों तरफ अलकायदा और तालिबान के धर्मांधों ने उत्पात मचा रखा है। धरती में रूस की छोड़ी हुई लैंड माइंस बिछी हुई हैं, जिनका पता नहीं चलता और वे जब-तब फट जाती हैं। आठ-दस चीनी भूगर्भशास्त्री एवं धातु-वैज्ञानिक भूमि का निरीक्षण-परीक्षण करते समय 2014 में, तालिबान के हमलों की भेंट चढ़ गए थे। यहीं पर ओसामा बिन लादेन का भी पड़ाव था। शायद उसके शिष्य अभी भी सक्रिय हैं।”

कि उन पर ताँबे का थोथा जमा हुआ था। विश्व के पुरातत्व शास्त्रियों का ध्यान इस ओर गया और यहाँ उत्खनन का काम शुरू कर दिया गया। अंतरराष्ट्रीय विद्वानों का दल अफगान सरकार के सहयोग से पिछले सात वर्षों से इस विशाल योजना में जुटा है, जिसके परिणाम मिस्र की खुदाई के महत्व से कम नहीं हैं। यहाँ एक पूरे बौद्ध नगर का अनावरण किया गया है। यहाँ एक विस्तृत और सुदृढ़ दुर्ग पाया गया है, जिसमें अनेक स्तूप, भवन, मंदिर सभागार आदि हैं। हजारों की संख्या में प्राचीन सिक्के, पांडुलिपियाँ, बुद्ध की मूर्तियाँ व आभूषण मिले हैं, जो तीसरी से सातवीं शताब्दी के निश्चित किये गए हैं। 650 प्रबुद्ध मजदूर इसकी महीन खुदाई में जोते गए। इस अमूल्य निधि की सुरक्षा हेतु 100 चौकियाँ दुर्ग के चारों तरफ तैनात की गई हैं, जिनमें 1700 सिपाही हथियार सहित पहरा देते हैं।

यह विषम सुरक्षा केवल प्राचीन इतिहास व सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा हेतु नहीं नियुक्त की गई है, वरन् इस धराशायी बौद्ध नगर के नीचे दबा है एक प्राकृतिक अमूल्य खजाना! यहाँ विश्व की सबसे समृद्ध ताँबे की खान दबी हुई है, जिसकी चौड़ाई ढाई मील है और जो डेढ़ मील पर बाबा वली पर्वत के अंदर तक समाई है, जिसे आँकना बिना खुदाई के संभव नहीं है। इसमें दबा हुआ ताँबे का भंडार है, जिसका वज़न 1,25,00,000 टन (अनुमानित) आँका गया है। इसके बिकने से अफगानिस्तान विश्व का सबसे अमीर देश बन सकता है।

पर्याप्त प्रमाण यह घोषित करते हैं कि प्राचीन काल में यहाँ धातु का खनन होता था। संभवतः इसकी समृद्धि ने अरब के मुसलमानों को आकर्षित किया होगा। बाबा वली पहाड़ से फिसलता रंग-बिरंगा कीचड़ इसी धातु शुद्धीकरण का प्रमाण है। 'मेस अयनाक' का शाब्दिक अर्थ है, 'ताँबे का नन्हा-सा कुआँ', परंतु वास्तव में यह इतना विशाल है कि चीन ने इसे खरीदने के लिए तीस अरब डॉलर का प्रस्ताव रखा। इसके अतिरिक्त, उत्खनन के लिए आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरण, 400 मेगावाट बिजली बनाने वाले एक विशाल बिजलीघर व पर्यावरण के संपूर्ण आधुनिकीकरण की भी योजना रखी। यातायात के लिए सड़कें, पुल, रेलगाड़ियाँ व हवाई अड्डे बनाने का जिम्मा उठाया। मगर अफगानिस्तान के विद्वानों ने इस योजना को कार्यान्वित करने पर रोक लगा दी। विश्व के पुरातत्व शास्त्रियों का कहना है कि काम शुरू होने से पहले इस क्षेत्र की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित किया जाए।

धर्मांध क्रूर इस्लामी शक्तियों के रहते विद्वानों को भय है कि यह नगर चीन के हाथों नहीं तो लुटेरों के हाथ जरूर बरबाद हो जाएगा और यह अमूल्य खजाना विज्ञान व मानवता के हाथ नहीं आ पाएगा। अभी ही अनेक नमूने नष्ट हो गए हैं या जान-बूझकर कर दिये गए हैं। अनेक चोरी से तस्करों के हाथ पड़ गए हैं। चारों तरफ अलकायदा और तालिबान के धर्मांधों ने उत्पात मचा रखा है। धरती में रूस की छोड़ी हुई लैंड माइंस बिछी हुई हैं, जिनका पता नहीं चलता और वे जब-तब फट जाती हैं। आठ-दस चीनी भूगर्भशास्त्री एवं धातु-वैज्ञानिक भूमि का निरीक्षण-परीक्षण करते समय 2014 में, तालिबान के हमलों की भेंट चढ़ गए थे। यहीं पर ओसामा बिन लादेन का भी पड़ाव था। शायद उसके शिष्य अभी भी सक्रिय हैं। इसके साथ ही यहाँ पानी और बिजली की भारी कमी है। इन हालातों में चीन ने अपनी कुछ शर्तों से मुँह मोड़ लिया, जिससे अफगान सरकार ने योजना पर आपत्ति उठाई। अतः फिलहाल चीन ने हाथ समेट लिये हैं। वस्तुतः, धातु के खनन का कार्य 2012 में चालू हो जाना चाहिए था।

पुरातत्व के क्षेत्र में फ्रांस और अमेरिका सबसे अधिक सहायक रहे हैं। अतः 2009 से लगाकर 2014 तक फ्रांस के विद्वान फिलिप मार्कविस के निर्देशन में इस क्षेत्र का उत्खनन हुआ और अनेक अमूल्य ऐतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए। उन्होंने स्थानीय विश्वविद्यालयों की सहायता से इन वस्तुओं की अलग-अलग व्याख्या पंजीकृत की और सारिणी बनाई, जिसे इलेक्ट्रॉनिक साधनों से भी सुरक्षित किया, ताकि तस्कर अपना करतब न दिखा सकें।

विडंबना यह है कि जो प्राचीन इतिहास इस उत्खनन से अनावृत हुआ है, वह इस प्रदेश की शांतिप्रिय संस्कृति का साक्षी है, जो कि आधुनिक काल की हिंसात्मक गतिविधियों से कतई उलटा है। यहाँ आध्यात्मिकता का साम्राज्य था। करीब सात बहुखंडीय भवन भिक्षुओं के पाये गए हैं, जिनमें पूजा वेदियाँ और विशालकाय कमरे आदि हैं। यह भवन अर्द्धचंद्राकार दुर्ग के चारों ओर फैला हुआ है। इन पर ऊँची

बुर्जियाँ बनी हैं, जिन पर चढ़कर दूर-दूर तक देखा जा सकता था। इन प्रासादों के मध्य करीब सौ स्तूप पाये गए हैं। ये स्तूप पक्के और विशाल भी हैं और छोटे-छोटे, उठा लेने योग्य भी।

प्रसिद्ध अफगानी पुरातत्ववेत्ता अब्दुल कादिरी तैमूरी के शब्दों में, यह तत्कालीन 'विश्व का केंद्र' था। गांधार के बौद्ध भिक्षुओं ने कला व संस्कृति की अपूर्व उन्नति की व उस काल की सभी सभ्यताओं की कलात्मकता के सम्मिश्रण से बुद्ध की प्रतिमाएँ बनाने का आविष्कार किया। विशेषकर यूनान और रोम की नकल में प्रतिमा बनाने की कला का जन्म यहीं पर हुआ। संभवतः बाकी हिंदू क्षेत्र में इष्टदेव को साकार रूप देने का रिवाज़ यहीं से शुरू हुआ। मध्य एशिया की भाषाओं में प्रतिमा को 'बुत्त' कहा जाता है। इन भाषाओं में 'द्ध' व्यंजन नहीं था। अतः ये 'बुद्ध' को 'बुत्त' बुलाते थे। 'बुत्तपरस्ती' संज्ञा का यही उद्गम है। कालांतर में, जब इस्लाम ने जिहाद उठाया और बुत्तों को तोड़ा तो वह इन्हीं बुद्धों को तोड़ते आगे बढ़े। मेस अयनाक में जो बुद्ध की मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें लाल, नीला, पीला व नारंगी रंग भरा गया था, जो अभी भी सुरक्षित है। यह प्रभाव मिस्र की कला से आया लगता है। इसके अतिरिक्त, स्वर्ण व अन्य धातुओं के कीमती आभूषण पाये गए हैं, जिनका सौंदर्य आज के आभूषणों से कम नहीं है। भवनों की आंतरिक सज्जा चकित कर देने वाले भित्तिचित्रों से पूर्ण है।

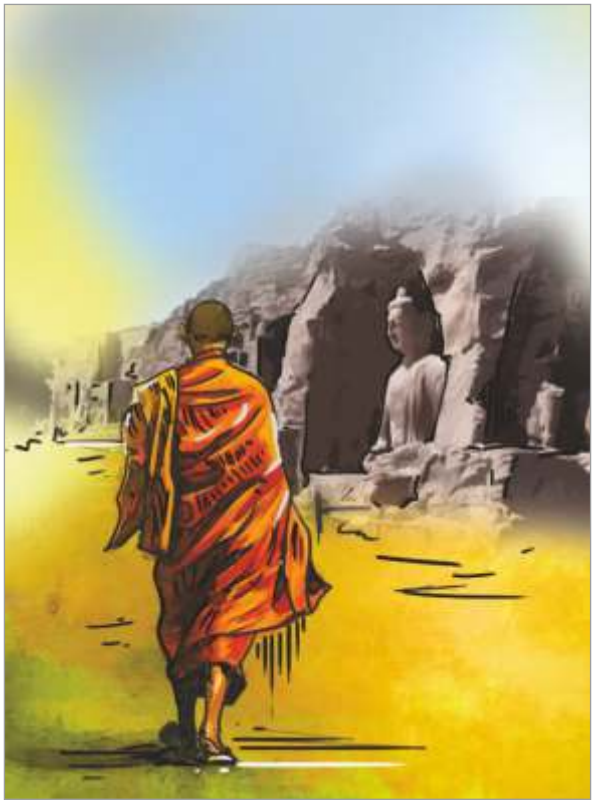

यहीं पर सिद्धार्थ की अलभ्य प्रतिमा मिली है, जो उनके बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व की है, जब वह केवल एक राजकुमार थे। हजारों की संख्या में ताँबे के सिक्के मिले हैं, जो तीसरी से सातवीं शताब्दी तक के हैं। कई सिक्कों पर कनिष्क की छाप है। कइयों पर एक ओर कनिष्क और एक ओर बुद्ध या आर्दोक्ष की छाप है। इससे यह साबित होता है कि कनिष्क जोरोस्ट्रियन धर्म का भी आदर करता था। इन सिक्कों का मान रोम से चीन तक था। कुषाण काल के इन सिक्कों में कुल मिलकर 23 देवी-देवताओं की मूर्ति की छाप है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह काल तत्कालीन उत्तर भारत में सहिष्णुता और व्यापक दृष्टिकोण का था। मेस अयनाक इस बात का साक्षी है कि इस प्रदेश के बौद्ध मतावलंबी उद्योगी व संपन्न थे। यहाँ दबी ताँबे की खान तब समृद्धि उलीचती थी और यह प्रदेश एक व्यस्त व्यापारिक केंद्र था।

इसी के उत्तर-पश्चिम में करीब 125 मील की दूरी पर प्रसिद्ध बामियान प्रदेश है। बामियान नगर चीन और मिस्र के बीच रेशम पथ पर स्थित है, जहाँ उस काल में अनेक देशों के व्यापारी डेरा डालते थे। उस काल तक बौद्ध धर्म चीन, मंचूरिया, मंगोलिया, उज़्बेकिस्तान, समरकंद, सोगड़ियाना आदि देशों में अपनी जड़ें जमा चुका था। यहाँ छठी शताब्दी में पर्वत शिलाओं को काटकर बुद्ध की विशालकाय प्रतिमाएँ बनायी गई थीं। इस काल तक इस्लाम धर्म का जन्म नहीं हुआ था। प्रचार भी सातवीं शताब्दी के बाद शुरू हुआ था। इन्हें 2001 में तालिबान द्वारा निर्ममता से बारूद लगाकर धराशायी कर दिया गया, धर्म के नाम पर।

मेस अयनाक उद्योग का केंद्र होने के साथ-साथ धर्म और संस्कृति का भी 'समावेशन कूप' था। यहाँ से मिले अवशेष स्वयं इस बात की गवाही देते हैं कि अनेक धर्म यहाँ समानांतर पलते थे और यहाँ किसी युद्ध के प्रमाण नहीं मिले हैं। उस समय के सभी आस-पास के राज्यों से ऐसी सहभावना और मैत्री का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। दरअसल, न आगे, न पीछे के काल में बामियान लुप्त हो गया, परंतु मेस अयनाक अपनी खदानों के कारण दबा रहा और बच गया। वैज्ञानिकों का मानना है कि अपनी पराकाष्ठा के काल में इस प्रदेश में धातु के उत्खनन और परिष्करण के कारण इस प्रदेश की हरियाली को भीषण आघात पहुँचा और यहाँ सूखा पड़ गया। नगरवासी पलायन कर गए या सूखे से मर गए। आज की तारीख में यह प्रदेश बंजर, ऊबड़-खाबड़ एवं श्रीहीन है। अनुमान लगाया जाता है कि एक सेर तैयार माल, शुद्ध ताँबा बनाने के लिए भट्टी में एक मन (40 सेर) कच्चा कोयला डालना पड़ता था। बाबा वली पर्वत की ढलानों पर उगे हिमालयी जंगल, जो सदियों से खड़े थे, शनैः-शनैः कच्चा कोयला बनाने के लिए काट डाले गए। जंगलों को काटने से वर्षा का क्रम बदल जाता है। पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। इस प्रदेश की हरियाली को इतना नुकसान पहुँचा कि प्रदेश में अकाल पड़ गया।

धातु को आँच पर गलाकर शुद्ध करने के बाद उसे ठंडा करने के लिए मनों पानी की जरूरत पड़ती है। पानी यहाँ पर्वतीय जलधाराओं, कुओं अथवा बरसाती नदियों से प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त, भूमिगत नदियाँ भी थीं। खुदाई में जो प्रमाण मिले हैं, वे बताते हैं कि भूमिगत नहरें, जिन्हें 'करेज़' कहा जाता है, बनायी गई थीं। मगर जब वर्षा की कमी होने लगती है तब यह पानी की सतह और नीचे चली जाती है। विशाल पेड़ों की जड़ें वर्षा के पानी को भूमि में संचित करती हैं। उनके कट जाने से यह प्राकृतिक क्रम बंद हो गया, अतः ये नदियाँ और करेज़ सूख गए। पानी की अंदरूनी सतह और भी दब गई। भयानक बात यह है कि यदि यहाँ फिर से उत्खनन का काम चला तो पानी की रही-सही संपदा भी खत्म हो जाएगी।

एक और समस्या पुरातत्ववेत्ताओं के समक्ष मुँह बाये खड़ी है। अभी तक खुदाई से निकले बेजोड़ नमूनों को सँभालने के लिए कोई संग्रहालय नहीं है। काबुल के राष्ट्रीय संग्रहालय में इतना स्थान नहीं बचा है कि सारा सामान सजाया जा सके। काबुल के संस्कृति अधिकारी इन कलाकृतियों को लेकर बहुत चिंतित हैं। इन्हें मेस अयनाक के निकट ही अस्थायी गोदामों में फिलहाल रख दिया गया है। कई नमूनों का विश्लेषण व पंजीकरण भी अभी नहीं हुआ है।

पेट की खातिर गरीब मजदूर जल्दी से तालिबान की कुचालों के झाँसे में फँस जाते हैं। यदि शीघ्र ही उनकी रोजी-रोटी का समुचित प्रबंध नहीं हुआ तो वे कुचक्री शक्तियों के गुलाम बन जाएँगे। इससे मेस अयनाक की सुरक्षा को भारी ख़तरा है। चीन को ताँबे की बेहद जरूरत रही है अनादि काल से। अभी भी है। इसीलिए उसने इस खदान का सौदा किया है। यदि यहाँ काम चालू हो जाता है तो करीब साढ़े चार हजार नौकरियाँ स्थानीय जनता को मिलेंगी और आस-पास के रहने वालों को अपना खेत-गाँव आदि छोड़ना पड़ेगा, जिसके लिए वे कतई तैयार नहीं हैं। अतः जब तक उनको आजीविका के समुचित साधन उपलब्ध न हों, मेस अयनाक का भविष्य अनिश्चित है। रूस द्वारा छोड़ी गई लैंड-माइंस से जख्मी एक व्यक्ति अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए, एक टाँग पर बैसाखी की सहायता से चलकर रोज दो घंटे की यात्रा पूरी करता है, केवल खुदाई में मिले सामान को पानी से धोकर साफ करने के लिए। चिंता इस बात की है कि यहाँ काम करने वाले मजदूर इस अमूल्य खजाने को अपने धर्म से नहीं जोड़ पाते। तालिबान के क्रूर अनुयायी उन्हें 'काफिर' कहकर लज्जित करते हैं और उन पर इल्ज़ाम लगाते हैं कि तुम मुसलमान होकर बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे हो, इसलिए यह ऐतिहासिक धरोहर खतरे में है। सबसे बड़ा डर चोरी का है।

परंतु जो प्रबुद्ध हैं, वे पक्के खानदानी मुसलमान होते हुए भी अपने देश के इतिहास पर गर्व करते हैं और उसकी भव्यता का गुणगान करते हैं। ऐसे ही एक व्यक्ति हैं, काबुल के युवा विद्वान सुल्तान मसूद मुरादी। अपनी डिग्री पूरी करते ही वह इस उत्खनन के काम में जी-जान से जुट गए। उनको गर्व है कि उनकी टीम में अनेक धर्मों के कार्यकर्ता हैं, जो हिल-मिलकर काम करते हैं और अफगानिस्तान की 5000 वर्ष पुरानी सभ्यता पर गर्व करते हैं। उनका हरसंभव प्रयास है कि अफगानिस्तान के युवा इस धरोहर से परिचित हों और इसका सम्मान करें। उनका खेदपूर्ण वक्तव्य है कि 'इसके बिना उनका देश केवल आतंकवाद और अफीम के लिए विश्व में बदनाम रहेगा। आने वाली सदियाँ उनकी आबरू को रसातल में ले डूबेंगी।' आजकल सुल्तान मसूद इन कलात्मक नमूनों का इंटरनेट पर पूरा ब्योरा सुरक्षित करने में संलग्न हैं। उनका स्वप्न है कि यहाँ एक भव्य संग्रहालय बने और यह नगर पुनः आबाद हो व विश्व के पर्यटक यहाँ आएँ। इसका वही रुतबा हो, जो मिस्र के पिरामिडों व कब्रों का है, जिन्हें देखने लाखों की संख्या में यात्री आते हैं। पर्यटन स्वयं में एक बहुत बड़ा आय का साधन होता है। सुरक्षित सुंदर आधुनिक पर्यटन स्थल करोड़ों की संपत्ति अर्जित करते हैं। मेक्सिको देश ने माया संस्कृति को देश की संपदा मानकर उसके सभी खंडहरों के आस-पास हॉलिडे नगर विकसित किए हैं, केवल पिछले 40 वर्षों में और अरबों डॉलर कमा रहा है।

विविधताओं का गागर हमारा हिंद महासागर

भारतीय संस्कृति में महासागरों का उल्लेख सदा से मिलता रहा है। इस संदर्भ में सबसे पहले यदि किसी का स्मरण हो आता है, तो वे वेदों में वर्णित मंत्र-द्रष्टा वैदिक ऋषि अगस्त्य हैं। हिंदू पौराणिक ग्रंथों के साथ-साथ जनश्रुतीय परंपराओं में प्रचलित कथा के अनुसार, विश्व-कल्याण के लिए ऋषि अगस्त्य ने अपनी मंत्र शक्ति से समुद्र का संपूर्ण जल पी लिया था। प्राचीन भारतीय वैदिक ग्रंथों और यहाँ तक कि जैन ग्रंथ 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' में भी धरती के सात द्वीप जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक एवं पुष्कर बताये गए हैं, जिनमें जम्बूद्वीप को इन

सभी के केंद्र में स्थित माना गया है। जम्बूद्वीप के भी नौ खंड क्रमशः इलावृत, भद्राश्व, किंपुरुष, भारत, हरि, केतुमाल, रम्यक, कुरु और हिरण्मय बतलाये गए हैं। इनमें से भारतखंड को चारों ओर से लवण सागर से घिरा हुआ बताया गया है। इसी महासागर को संस्कृत में 'रत्नाकर' नाम से संबोधित किया गया है। वराहमिहिर द्वारा रचित 'बृहत्संहिता' नामक ग्रंथ के बाद 'बृहस्पति आगम' नाम की एक रचना का उल्लेख मिलता है, जिसके एक श्लोक के अनुसार, 'हिमालयात् समारभ्य यावत् इन्दु सरोवरम्। तं देवनिर्मितं देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते ॥' अर्थात् हिमालय से प्रारंभ होकर इन्दु सरोवर (हिंद महासागर) तक यह देव निर्मित देश 'हिंदु-स्थान' कहलाता है।

वेदोल्लिखित हिंद महासागर के भूवैज्ञानिक प्रमाण भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि लगभग 15 करोड़ वर्ष पूर्व, जब वृहत् महाद्वीप गोंडवाना का टूटना प्रारंभ हुआ तभी से हिंद महासागर का निर्माण भी शुरू हुआ। मध्यजीवी महाकल्प के अंत में यानी आज से लगभग सात करोड़ वर्ष पूर्व तक, लगभग संपूर्ण हिंद महासागर का निर्माण हो चुका था। हिंद महासागर ने पृथ्वी पर प्रारंभिक मानव-प्रवास और मेसोपोटामिया, प्राचीन मिस्र और सिंधु घाटी जैसी दुनिया की प्राचीनतम विकसित मानव सभ्यताओं के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पहली या दूसरी शताब्दी में 'यूडोक्सस ऑफ साइजिकस' पहला मिस्र समुद्र अन्वेषक था, जिसने हिंद महासागर को पार किया था। वर्तमान काल में विश्व में यही हिंद महासागर एकमात्र ऐसा महासागर है, जिसका नाम किसी देश के नाम अर्थात् 'भारत' के नाम पर रखा गया है।

हिंद महासागर विश्व का तीसरा बड़ा महासागर है, जिसमें पृथ्वी की सतह का

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

एक स्वतंत्र लेखिका हैं। 'विज्ञान प्रगति' एवं 'आविष्कार' जैसी पत्रिकाओं में उनके विज्ञान लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं।

प्रकाशन : भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र, अंतरराष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान : स्वर्णिम पचास वर्ष, अंटार्कटिका : भारत की हिमानी महाद्वीप के लिए यात्रा आदि पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : मध्य प्रदेश युवा वैज्ञानिक पुरस्कार (1999), राजीव गाँधी ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार-2012 (2014 में प्रदत्त), वीरांगना सावित्रीबाई फुले राष्ट्रीय फेलोशिप सम्मान (2016), नारी गौरव सम्मान (2016)।

संपर्क : मोबाइल– 8975245042

ईमेल– shubhrataravi@gmail.com

लगभग 20 प्रतिशत जल अंतर्निहित है। हिंद महासागर पश्चिम में पूर्वी प्रायद्वीप और अफ्रीका से, पूर्व में इंडोचीन, सुण्डाद्वीप, मलेशिया, ऑस्ट्रेलिया से, उत्तर में भारतीय उपमहाद्वीप से और दक्षिण में दक्षिणी महासागर से घिरा हुआ है। दक्षिण-पश्चिम में यह अटलांटिक महासागर से और पूर्व व दक्षिण-पूर्व में प्रशांत महासागर से जुड़ा हुआ है। हिंद महासागर में कुल 57 द्वीप समाहित हैं, जिनमें विश्व के चौथे सबसे बड़े द्वीप मेडागास्कर के अलावारी यूनियन द्वीप, कोमोरोस, सेशेल्स, मालदीव, मॉरीशस, श्रीलंका और इंडोनेशिया के द्वीपसमूह शामिल हैं। साथ ही, हिंद महासागर कुल 16 अफ्रीकी देशों और 18 एशियाई देशों की सीमाओं को स्पर्श करता है। ऐसे विशाल हिंद महासागर क्षेत्र में विश्व की लगभग 40 प्रतिशत आबादी निवास करती है। महान संस्कृतियों के वैविध्य क्षेत्र हिंद महासागर में भविष्य

के लिए भी प्रचुर अवसर उपलब्ध हैं। इन्हीं विशेषताओं ने हिंद महासागर को भूराजनीतिक और वाणिज्यिक महत्ता से चिरपरिपूर्ण बनाए रखा है। आज भी हिंद महासागर से होकर गुज़रने वाले जल और वायु मार्ग यूरोप, पूर्वी अफ्रीका, पश्चिमी-दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी एशिया, सुदूर पूर्व ऑस्ट्रेलिया और ओशिनिया को जोड़ते हैं। यही वह महासागर है, जिसने शताब्दियों से उत्तरी अटलांटिक और एशिया-प्रशांत क्षेत्र में स्थित बड़ी अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं और संस्कृतियों को एक सूत्र में पिरोकर रखा है। इन सभी तथ्यों को जब गहराई से विश्लेषित किया जाता है, तब हिंद महासागर में भारत की भौगोलिक, वाणिज्यिक, भूराजनीतिक और पर्यटन से लेकर सामरिक तक सभी क्षेत्रों में स्पष्ट केंद्रीय स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

प्राचीन काल से ही भारत को हिंद महासागर में अपनी इसी अद्वितीय स्थिति का लाभ मिलता रहा है। गुजरात तट पर मिले कई बंदरगाहों के मौन अवशेष मानो बतलाना चाहते हैं कि आज से लगभग चार हजार साल पहले मोहनजोदड़ो और हड़प्पा सभ्यता काल में भी भारत दुनिया के अन्य देशों, विशेषकर पश्चिमी एशियाई देशों के साथ समुद्री मार्ग से नियमित रूप से व्यापार करता था। भले ही यह लोक प्रचलित है कि सन् 1498 में वास्कोडिगामा ने 'केप ऑफ गुड होप' होते हुए भारत पहुँचकर यहाँ आने का समुद्री मार्ग खोजा था, लेकिन इस सत्य को भी झुठलाया नहीं जा सकता कि उस कालखंड के बहुत पहले से भी भारत से जलमार्ग द्वारा पूर्वी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया, दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया और पूर्वी एशिया के देशों तक पहुँचा जाता था। उस समय के भारत और पूर्वी अफ्रीकी व्यापारिक संबंधों के प्रमाण वे ही मानसूनी व्यापारी हवाएँ हैं, जिनके माध्यम से दोनों क्षेत्रों के बीच संचार सुगम होता था। भारत उस दौरान अपने मसालों, कपास एवं सूती कपड़ों का व्यापार अफ्रीका एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ-साथ यूरोप के दूरस्थ देशों के साथ करने में सक्षम था। इस तरह हिंद महासागर क्षेत्र के देशों तथा इससे दूर स्थित देशों के साथ भारत के समुद्री व्यापारिक संबंध आज भी उसकी अर्थव्यवस्था में कहीं गहरी पैठ बनाये हुए हैं। वर्तमान में हिंद महासागर में भारत का 90 प्रतिशत कारोबार होता है। भारत के विविध ऊर्जा संसाधनों की एक बड़ी मात्रा भी हिंद महासागर से ही प्राप्त की जाती है। भारत अपने लिए प्राकृतिक गैस और दो-तिहाई पेट्रोलियम की पूर्ति हिंद महासागर और उसके साथी सागरों, विशेष रूप से बॉम्बे से कैम्बे की खाड़ी तक के अरब सागर क्षेत्र का उपयोग करके करता है। भारत के कुल मछली उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत हिंद महासागर के अंतर्गत भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र से किया जाता है।

वैश्विक व्यापार की बात की जाए, तो इसका एक बड़ा भाग हिंद महासागर के माध्यम से ही किया जा रहा है, जिसमें वैश्विक तेल व्यापार का 80 प्रतिशत, कंटेनरीकृत कार्गो का 50 प्रतिशत और थोक कार्गो का 33 प्रतिशत शामिल है। विश्व के अपतटीय तेल उत्पादन का 40 प्रतिशत हिंद महासागर की तलहटी से किया जा रहा है। दुनिया का तेल संबंधी अधिकतम समुद्री व्यापार हिंद महासागर के अवरोध बिंदु यानी चेक पॉइंट के रूप में जाने जाने वाले तीन सँकरे जलमार्गों, यथा फारस की खाड़ी और ओमान की खाड़ी के बीच स्थित होर्मुज जलडमरूमध्य, अंडमान सागर और दक्षिण चीन सागर को जोड़ने वाले मलक्का जलडमरूमध्य और लाल सागर को अदन की खाड़ी और हिंद महासागर से जोड़ने वाले बाब अल-मंडेब जलडमरूमध्य के माध्यम से होता है। अंतरराष्ट्रीय समुद्री व्यापार का 25 प्रतिशत मलक्का जलडमरूमध्य से होकर गुजरता है। पिछले कुछ

दशकों में हिंद महासागर पर वैश्विक ध्यान पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है, जिसमें क्षेत्रीय और वैश्विक संवाद में भारत को हिंद-प्रशांत के बढ़ते महत्व के संदर्भ में उभरते हुए एक केंद्र के रूप में देखा जाने लगा है। इसी संदर्भ में, हिंद महासागर में नीली अर्थव्यवस्था की अवधारणा का भी समावेश हो चुका है। इसके अंतर्गत हिंद महासागरीय क्षेत्रों में अब समुद्री व्यापार के अलावा नौसैनिक उद्योग, मत्स्य पालन, समुद्री प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक अनुसंधान, एकीकृत तटीय प्रबंधन, समुद्री पर्यावरण पर्यटन, अंतर्देशीय जलमार्गों से लेकर महासागर, समुद्र एवं तटों से संबंधित गतिविधियाँ बढ़ रही हैं। इससे भारत ही नहीं, बल्कि हिंद महासागर से जुड़े सभी राष्ट्र अपनी-अपनी ऊर्जा एवं खाद्य सुरक्षा और सतत विकास हेतु इसको अर्थव्यवस्था से सीधे जोड़ने के लिए नीतियाँ और योजनाएँ बनाने में प्रतिबद्ध हैं।

“हिंद महासागर और उससे संलग्न सागरों की नीली आकर्षक जलनिधि, रुपहली रेत से चमकते मनोरम समुद्र तट, भागती-दौड़ती व्यस्ततम दुनिया से दूर शांतिदूत-से इसके असंख्य द्वीपों ने इनको पर्यटन स्थल भी बना दिया है। आज जब कभी भी समुद्री पर्यटन का जिक्र होता है तो सेशेल्स, मालदीव, मॉरीशस, मेडागास्कर, रीयूनियन द्वीप, कोमोरोस, श्रीलंका, इंडोनेशिया द्वीपसमूह के नाम पहले जुबान पर आ जाते हैं, क्योंकि इन देशों ने हिंद महासागर को पर्यटन स्थल की तरह उपयोग करते हुए उसे अपना जीविकोपार्जन का माध्यम बनाया हुआ है। इनके अलावा भी जावा, प्रालिन, ग्रांडे कोमोर, मनेम्बा, रॉस द्वीप जैसे जाने कितने द्वीपों पर लोग आजकल हिंद महासागरीय पर्यटन का आनंद ले रहे हैं।”

नीली अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से निश्चित तौर पर हिंद महासागर को एक समृद्ध स्रोत कहा जा सकता है। इसके अंतरराष्ट्रीय जल क्षेत्र में न केवल पॉलिमेटालिक नोड्यूल्स और प्राकृतिक गैस हाइड्रेट्स के विशाल भंडार विद्यमान हैं, बल्कि यह दुनिया के 30 प्रतिशत मूँगा प्रवाल क्षेत्र का गृह भी है। इनके अलावा, समुद्री जैवविविधता से परिपूर्ण हिंद महासागर ताज़ी टूना जैसी उच्च प्रोटीन वाली मछलियों सहित शार्क, डुगोंग, व्हेल, समुद्री कछुओं और मैंग्रोव तथा समुद्री घास से समृद्ध है। हिंद महासागर के इन सभी संसाधनों का महत्व मत्स्य पालन, जलीय कृषि, महासागर आधारित नवीकरणीय ऊर्जा, शिपिंग उद्योग आदि जैसे कई उभरते नए क्षेत्रों में समय के साथ बढ़ता जा रहा है।

हिंद महासागर और उससे संलग्न सागरों की नीली आकर्षक जलनिधि, रुपहली रेत से चमकते मनोरम समुद्र तट, भागती-दौड़ती व्यस्ततम दुनिया से दूर शांतिदूत-से इसके असंख्य द्वीपों ने इनको पर्यटन स्थल भी बना दिया है। आज जब कभी भी समुद्री पर्यटन का जिक्र होता है तो सेशेल्स, मालदीव, मॉरीशस, मेडागास्कर, रीयूनियन द्वीप, कोमोरोस, श्रीलंका, इंडोनेशिया द्वीपसमूह के नाम पहले जुबान पर आ जाते हैं, क्योंकि इन देशों ने हिंद महासागर को पर्यटन स्थल की तरह उपयोग करते हुए उसे अपना जीविकोपार्जन का माध्यम बनाया हुआ है। इनके अलावा भी जावा, प्रालिन, ग्रांडे कोमोर, मनेम्बा, रॉस द्वीप जैसे जाने कितने द्वीपों पर लोग आजकल हिंद महासागरीय पर्यटन का आनंद ले रहे हैं।

हालाँकि, हिंद महासागर के संबंध में अब तक उल्लेखित उपर्युक्त सभी पहलू उसके सकारात्मक पक्ष को प्रस्तुत करते हैं, लेकिन इनके साथ उसे बहुत-सी अलग-अलग प्राकृतिक और मानवजनित चुनौतियों का सामना भी करना पड़ता है। महासागरीय संसाधनों की निरंतर लूट, समुद्री डकैती और सशस्त्र डकैती, गैर-कानूनी तरीके से की जाने वाली समुद्री मात्स्यिकी, नशीले पदार्थों और मानव अंगों सहित समुद्री तस्करी जैसी अन्य अवैध गतिविधियों ने हिंद महासागर में समुद्री सुरक्षा प्रक्रिया को जन्म दिया है। हिंद महासागर के कारण उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक आपदाएँ, जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, बढ़ते महासागर जलस्तर और प्रदूषित सागरीय जल ने समुद्री और मानव, दोनों जीवन को चुनौती दे रखी है।

समग्र महासागर पारिस्थितिक तंत्र एवं उससे जुड़ी निगरानी व्यवस्थाओं का संचालन संलग्न राष्ट्रों का अनिवार्य उत्तरदायित्व है। हिंद महासागर के इन समस्त पक्षों ने इसे एक महत्वपूर्ण भू-रणनीतिक स्थान भी बना रखा है। यह कोई आज की बात नहीं है, बल्कि द्वितीय

विश्वयुद्ध के बाद पश्चिमी हिंद महासागर क्षेत्र में अमेरिका ने हिंद महासागर के केंद्र में स्थित डिएगो गार्सिया में अपने सैन्य अड्डे के माध्यम से निरंतर अपनी उपस्थिति बनायी हुई है। मध्य हिंद महासागर में चागोस द्वीपसमूह के 60 छोटे द्वीपों में से सबसे बड़ा द्वीप डिएगो गार्सिया एक ऐसा सैन्य प्रतिष्ठान बन गया है, जिसमें लगभग 4,000 अमेरिकी और ब्रिटिश सैनिक तैनात हैं। कहीं-न-कहीं ऐसी ही गतिविधियों ने हिंद महासागर को रणनीतिक और सामरिक प्रभाव वाला रूप भी प्रदान कर दिया है। द्वीपीय राष्ट्र की अपनी समुद्री-भू-राजनीतिक रूपरेखा को आकार देने और समुद्री सुरक्षा सुनिश्चित करने में हिंद महासागर अत्यधिक रणनीतिक महत्व रखने लगा है। हिंद महासागर में द्वीपीय राष्ट्रों द्वारा नौसैनिक अड्डे को स्थापित करने की बात हो या फिर सैन्य और आर्थिक गतिविधियों का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने का मुद्दा हो, सभी दृष्टिकोणों से सुरक्षा एवं विकास तथा आध्यात्मिक और सांस्कृतिक निकटता के लिए औपचारिक समझौतों पर हस्ताक्षर और संगठनों की स्थापना बहुत मायने रखती है। यूनेस्को का 'अंतरसरकारी समुद्र विज्ञान आयोग' (आईओसी), दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों का एक क्षेत्रीय संगठन 'आसियान' तथा हिंद-प्रशांत में सुरक्षा वार्ता के लिए एक महत्वपूर्ण मंच 'एआरएफ' आदि कई ऐसे संबंधित तंत्र हैं, जो व्यापक हिंद-प्रशांत क्षेत्र में स्थिर और सुरक्षित क्षेत्रीय व्यवस्था हेतु गतिशील बहुपक्षवाद को बनाए रखने में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं। हिंद महासागर के तटवर्ती क्षेत्रों में व्यापार तथा सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग और सतत विकास को सशक्त बनाने हेतु सन् 1997 में स्थापित किया गया 'इंडियन ओशन रिम एसोसिएशन फॉर रीज़नल कोऑपरेशन' नामक मंच भी इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। वर्तमान में श्रीलंका वर्ष 2023 से 2025 तक इसकी अध्यक्षता कर रहा है। यह वही श्रीलंका है, जिसे उसके आकार के कारण किसी ने 'हिंद महासागर में भारत के आँसू की बूँद' कहा है।

20वीं सदी की अमेरिकी नौसेना के ध्वज अधिकारी, भू-रणनीतिज्ञ और इतिहासकार अल्फ्रेड थेयर ने हिंद महासागर को 'विश्व की भवितव्यता के निर्णायक महासागर' की संज्ञा दी थी। उनका मानना था कि विश्व में जिस देश का हिंद महासागर पर नियंत्रण होगा, उसी का एशिया पर प्रभुत्व होगा। आज 21वीं सदी में अल्फ्रेड के इस वक्तव्य को गहराई से विश्लेषित करें, तो कहीं-न-कहीं इसमें एक सच्चाई दिखाई पड़ती है। निस्संदेह, इस सत्यता के चित्र में भारत की सशक्त सामुद्रिक छवि के भी दर्शन होते हैं। हिंद महासागर की क्षमताओं के उपयोग की क्रमशः बढ़ती और उभरती नई-नई संभावनाओं को देखते हुए भारत ने इसके संपोषणीय एवं संतुलित ढंग से वैश्विक प्रयोग के लिए सहयोगात्मक प्रयास हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। हिंद महासागरीय क्षेत्र में प्राचीन व्यापार मार्गों सहित ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान का पता लगाने के लिए भारत द्वारा एक सांस्कृतिक पहल के तौर पर मौसम परियोजना प्रारंभ की गई है। 'भारत हिंद महासागर नौसेना संगोष्ठी' (आईओएनएस) और 'हिंद महासागर रिम एसोसिएशन' (आईओआरए) के माध्यम से भी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। वाणिज्यिक और रणनीतिक कारणों से अत्यधिक महत्वपूर्ण अपने पश्चिम में स्थित सोकोट्रा (यमन), मेडागास्कर, मॉरीशस और सेशेल्स के द्वीपों के साथ भी भारत हिंद महासागर में समग्र सुरक्षा प्रदाता के दृष्टिकोण से काम कर रहा है। 'क्षेत्र में सभी के लिए सुरक्षा एवं विकास (सागर)' हिंद महासागर क्षेत्र में समुद्री सहयोग की भारत की नीति या सिद्धांत है। निस्संदेह, भारत अपनी समुद्री नीतियों, सागर संबंधी योजनाओं और समुद्री सुरक्षा गतिविधियों द्वारा हिंद महासागर के सभी पश्चवर्ती देशों के साथ अपने द्विपक्षीय संबंधों को एक नवीन आयाम देते हुए स्वयं को सशक्त बनाने में सफल होता जा रहा है। निकट भविष्य में संभव है कि भारत पुनः अगस्त्य स्वरूप में हिंद महासागर पर अपने सशक्त नियंत्रण से विश्व की बुराइयों रूपी कलुषित जल का पान करके वसुधैव कुटुम्बकम वाले विश्व को स्थापित कर पाएगा।

आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
संस्कृति	संस्कृतिः	संस्कृति, सभ्याचर	सक़ाफ़त	सक़ाफ़त	संस्कृती	संस्कृती	संस्कृती	संस्कृति	संस्कृति	संस्कृति
दर्शन	दर्शनम्	दरशन	फ़ल्सफ़ा	फलसफ	दर्शनु	तत्व ज्ञान	तत्वज्ञान	तत्वज्ञान	दर्शन	दर्शन
आत्मा	आत्मा	आतमा	रूह	आत्मा, रूह	आत्मा रूहु	आत्मा	आत्मा	आत्मा	आत्मा	आत्ता (आँत्ता)
ईश्वर	ईश्वरः	ईशवर	ख़ुदा	दय, बगवान	ईश्वरु	ईश्वर	ईश्वर	ईश्वर	ईश्वर	ईश्शर
उपवास	उपवासः	वरत, उपवास	रोज़ा	फाक	उपवासु	उपवास	उपास	उपवास	उपवास	उपोस उपवास, ब्रत
जनेऊ	उपवीतम्, (जनेऊ)	जंजू, जनेऊ यगयोपवीत	जुन्नार	योनि	जणियो	जानवे	जानवे	जनोई	जनै, ब्रह्मसूत्र	पॉइता, उपबीत
तंत्र	तन्त्रम्	तंतर	तंतर	तंतर	तंत्रु	तंत्र	तंत्र	तंत्र	तन्त्र	तंत्र (मंत्र)
तीर्थ	तीर्थम्	तीरथ	ज़ियारत (ज़ियारत गाह)	तीरथ	तीर्थु	तीर्थ	तीर्थ	तीर्थ	तीर्थ	तीर्थ
पाप	पापम्	पाप	गुनाह	पाफ, गौनाह	पापु	पाप	पाप	पाप	पाप	पाप
पुण्य	पुण्यम्	पुन्न	कारे सवाब कारे-ख़ैर (सवाब)	पोन्य, सवाब	पुञु, पुण्यु	पुण्य	पुण्य	पुण्य	पुण्य	पुण्य (न्न)
भूत-प्रेत	भूतः-प्रेतः	भूत-प्रेत	भूत-प्रेत	बूत-प्रेथ जिन	भूतु-प्रेतु	भूत-प्रेत भूत-खेत	भूत-प्रेता	भूत-प्रेत	भूत-प्रेत	भूत-प्रेत
मंत्र	मन्त्रः	मंतर	अमल	मंथर	मंत्रु	मंत्र	मंत्र	मंत्र	मन्त्र	मंत्र
शैतान	दुष्टः	शतान, शैतान	शैतान	शेतान	शैतानु	सैतान	म्हारू	सेतान	सैतान, पिचास	शयतान

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोडो
संस्कृति	संस्कृति, नात्	संस्कृति	संस्कृति	पण्पाडु	संस्कारम्	संस्कृति	संस्कृति	लाकचार	संस्कृति	हारिमु
दर्शन	दर्शन येङ्बा मीतयेङ्	दर्शन	वेदांतुम	तत्तुवम्	दर्शनम्	तत्वशास्त्र	दर्शन	ञेनेल, दर्शन	दर्शन	सान्धौ, नुथाइ दर्सन
आत्मा	आत्मा, थवाइ	आत्मा	आत्म	आत्तुमा	आत्मावुॅ	आत्म	आतमा	आत्मा	आत्मा	सि, जिउमा
ईश्वर	लाइ, इश्वर	ईश्वर	भगवंतुडु	कडवुळ्	ईश्वरन्	ईश्वर	परमातमा	ईश्वर, चांदोबोंगा	ईश्वर	इसोर, गसाइ
उपबास, लघोन	चरा हेन्बा	उपबास	उपवासुम	उपवासम्	उपवासम्	उपवास	बरत	उपास	उपवास, उपास	उफबाास जाया-लोडा थानाय
लगुण यज्ञ-सूत्र	लूगुन	यज्ञोपबीत, पइता	जंदेमु	पूणूल्	यज्ञेपवीतम् पूणूल्	जनिवार	जनेऊ	पइता	जनेऊ, जनौ यज्ञोपवीत	लगुन
तंत्र	तंत्र	तंत्र	तंत्रुम	तंत्रम्	तंत्रम्	तंत्र	तैंतर	मानतार	तंत्र	मोन्थोर
तीर्थ	तीर्थ लाइफम	तीर्थ	तीर्थ स्थानुम	पुण्णियत्तलम्	पुण्यतीर्थम् पुण्यस्थलम्	तीर्थ	तीरथ	तीर्थ, धाम	तीर्थ	तिर्थ, गोथार खुलि
पाप	पाप	पाप	पापमु	पावम्	पापम्	पाप	पाप, परद्ध	पाप	पाप	फाफ, अगेन
पुण्य	पुन्य	पुण्य	पुण्यमु	पुण्णियम्	पुण्यम्	पुण्य	पुन्न	पुन्य	पुन्य	गोथार, फुन्य फोन
भूत-प्रेत	भुत-प्रेत, लाइ फत्तबा	भूतप्रेत पिशाच	भूतालु-प्रेतालु	पेयु	भूतवुम, प्रेतवुम, पेयुम पिशाचुम्	भूत-प्रेत	भूत-परेत	बॉगा-भुत	भूत-प्रेत	बुहुद-फिखास
मंत्र	मंत्र लाइशोन तीनशोन	मंत्र	मंत्रमु	मंतिरम्	मंत्रम्	मंत्र	मैंत्तर	मान्तार	मंत्र	मोन्थोर
चयतान	शैतान, सरोइ, लाइ फतत्वा	सइतान	दय्यमु	सैत्तान	शेयत्तानु, चेकुत्तान	सैतान	शतान, शतूना	शैतान	दुष्ट	सैथान

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

रानी का बलिदान, युगों तक रहेगा याद

जब अंग्रेज चारों तरफ से अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। वे अपनी कूटनीति और षड्यंत्रों से देसी रियासतों के राजाओं से उनका राज्य हड़प रहे थे, ऐसे में सन् 1857 में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी तलवार उठाई, जिसे देखकर अंग्रेजों की हिम्मत पस्त हो गई। एक युवती होकर भी वह प्रचंड ज्वाला बन अंग्रेजों के लिए मुसीबत बनकर आ खड़ी हुई, रानी लक्ष्मीबाई का नाम इसीलिए भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से लिखा हुआ है। वह वीर-साहसी-हिम्मती वीरांगना थी। रानी लक्ष्मीबाई का जन्म काशी में रहने वाले महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता मोरोपंत बाजीराव पेशवा के भाई चिमाजी आपा के यहाँ नौकरी करते थे।

रानी लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम 'छबीली' था। वे बचपन में नाना साहब के साथ खेलती थीं। बचपन में ही उन्होंने अस्त्र-शस्त्र चलाना, घुड़सवारी, तलवारबाजी सीख ली थी। पढ़ाई की तरफ भी उनका ध्यान था। लक्ष्मीबाई को बड़े-बड़े वीर योद्धाओं की कहानियाँ याद थीं। वीरता के गुण उनमें बचपन से ही कूट-कूटकर भरे थे। सन् 1842 में झाँसी के राजा गंगाधर राव के साथ इनका विवाह तय हुआ। वैवाहिक जीवन कुछ ही दिन सुखद रहा। अचानक गंगाधर राव का स्वास्थ्य बिगड़ गया। उन्होंने पाँच वर्ष के एक बालक दामोदर राव को गोद ले लिया। गंगाधर राव ने दत्तक पुत्र तो ले लिया, किंतु अंग्रेजों ने उसे पुत्र नहीं माना। इसीलिए उन्होंने दामोदर राव को उत्तराधिकारी भी नहीं माना। राजा गंगाधर राव का स्वास्थ्य निरंतर गिर रहा था, फलतः सन् 1853 में उनका निधन हो गया। जैसे ही झाँसी के महाराज की मृत्यु हुई, वैसे ही अंग्रेजों ने झाँसी को ब्रिटिश राज्य में मिलाने का षड्यंत्र शुरू कर दिया। झाँसी के प्रति अंग्रेजों के षड्यंत्र को जानकर रानी लक्ष्मीबाई को बहुत दुख हुआ, पर वे कुछ समय तक शांत रहीं। पर देश के प्रति उनके मन में अपार प्रेम और श्रद्धा थी। कुछ राजे-रजवाड़े अंग्रेजों का विरोध कर रहे थे। रानी भी इसमें सम्मिलित थीं। वे गुप्त रूप से अंग्रेजों से लड़ने का मन बना चुकी थीं।

इधर, अंग्रेजों ने अचानक झाँसी पर आक्रमण कर दिया। रानी ने भी तैयारी कर रखी थी। अंग्रेज रानी के समक्ष ठहर न सके। वे भाग खड़े हुए, पर अधिक दिनों तक रानी झाँसी पर राज्य नहीं कर सकीं। एक बार फिर अंग्रेजों की बड़ी सेना ने झाँसी पर आक्रमण बोल दिया। कुछ विश्वासघाती लोगों ने रानी के साथ दगा किया, कुछ

डॉ. ऋषिमोहन श्रीवास्तव

जन्म : 07 सितंबर, 1954, दतिया

शिक्षा : एम.ए.

संप्रति : स्वतंत्र लेखन

प्रकाशन : 24 कृतियाँ प्रकाशित, 12 पुस्तकें बाल साहित्य पर प्रकाशित, 11 संपादित कृतियाँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8964963542

सरदार अंग्रेजों के साथ मिल गए। रानी को लगा, अब अंग्रेजों से युद्ध कर पाना संभव नहीं है तो वे अपनी सहेली झलकारी से बोलीं, "तुम कुछ समय तक अंग्रेजों को रोको, तब तक मैं निकलती हूँ।" झलकारी ने रानी लक्ष्मीबाई के आदेश का पालन किया। वह रानी लक्ष्मीबाई की वेशभूषा में किले की ऊँची दीवार के पास खड़ी हो गई।

अंग्रेज अफसरों ने झलकारी को ही रानी लक्ष्मीबाई समझा। झलकारी बिलकुल रानी लक्ष्मीबाई जैसी दिखती थीं। झाँसी के किले से अपना प्रिय घोड़ा लेकर रानी अपने कुछ विश्वासपात्रों के साथ निकल पड़ीं। वे झाँसी से सीधे कालपी पहुँचीं। यहाँ पर पेशवा की सेना तैयार खड़ी थी। नाना और रानी ने अंग्रेजों से मुकाबला करने की सोची। कालपी तक अंग्रेजों की सेना आ पहुँची थी। अंग्रेज और रानी के मध्य जमकर मुकाबला हुआ। अंग्रेज रानी लक्ष्मीबाई की वीरता देखकर दंग थे, पर अंग्रेजों की सेना अधिक थी, इसलिए जीत भी उन्हीं की हुई। रानी सोच रही थीं कि किस तरह अंग्रेजों को परास्त किया जाए, तभी उन्हें ग्वालियर के महाराज सिंधिया की याद आई। उस समय जयाजीराव सिंधिया का शासन ग्वालियर में था। उन्होंने रानी की सहायता नहीं की। रानी ने उन्हें ग्वालियर से भागने पर मजबूर कर दिया। नाना की सेना भी ग्वालियर विजय में उलझी रही। तभी अंग्रेजों ने पुनः तैयारी कर ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया। रानी की सेना अधिक समय तक अंग्रेजों से युद्ध न कर सकी, क्योंकि सिंधिया की सेना ने दगाबाजी की। वे अंग्रेजों के साथ मिल गए।

रानी पूरी वीरता से मर्दाने वेश में घोड़े पर सवार होकर अंग्रेजों से लड़ती रहीं। जब उन्हें लगा कि अब वे जीत नहीं पाएँगी तो खून से लथपथ वे किले से निकल पड़ीं। शरीर में अनेक घाव हो चुके थे। अंग्रेज बराबर उनका पीछा कर रहे थे। महारानी अंग्रेजों के घेरे से भलीभाँति निकल जातीं, किंतु नाले पर उनका घोड़ा अड़ गया। घोड़ा नया था, पुराना घोड़ा मर चुका था। यह घोड़ा उनका नहीं था। सिंधिया के अस्तबल से लिया घोड़ा था।

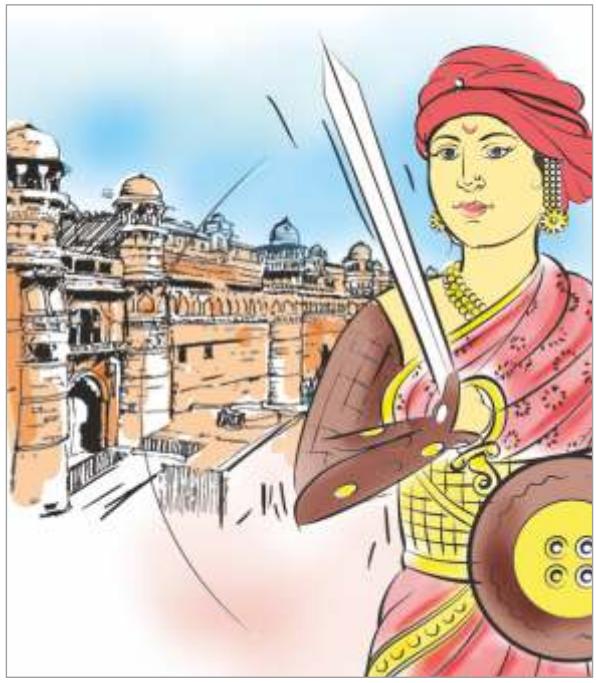

इधर, अंग्रेजों का एक दल उनका बराबर पीछा कर रहा था। एक अंग्रेज ने पीछे से वार किया, जिससे महारानी के सिर का दाहिना भाग अलग हो गया। इसी समय दूसरे अंग्रेज ने अपनी नुकीली किरच छाती में भोंक दी। रानी ने तुरंत तलवार चलाकर दोनों अंग्रेजों को मृत्युलोक पहुँचा दिया। यह देखकर दूसरे अंग्रेज भाग खड़े हुए।

रानी का संपूर्ण शरीर खून से लथपथ था, अंतिम समय जानकर उन्होंने अपने विश्वस्त सेवक रामचंद्र राव को देखा। वे महारानी की दशा पर आँसू बहा रहे थे। रानी के साथ उनके चार-पाँच विश्वस्त साथी थे, वे रानी को उठाकर बाबा गंगादास की कुटिया में ले गए। वहाँ उन्हें गंगाजल पिलाया गया। उन्होंने अपने पुत्र दामोदर राव को देखा और कुछ क्षणों के बाद प्राण त्याग दिए। बाबा ने दामोदर राव को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। बाबा ने अपने साथियों के साथ रानी का अंतिम संस्कार वहीं कुटिया के पास कर दिया। आज ग्वालियर में उसी जगह पर रानी लक्ष्मीबाई की भव्य समाधि बनी हुई है। ग्वालियर स्टेशन से शहर के लिए आने वालों को रास्ते में यह समाधि दिखलाई पड़ती है। आज रानी लक्ष्मीबाई हमारे बीच नहीं हैं, पर उनका देश के लिए निःस्वार्थ बलिदान युगों-युगों तक जीवंत रहेगा। उन्होंने 1857 में जो चिनगारी जलाई थी, उसी ने भारतवर्ष को स्वाधीनता दिलाई।

उलगुलान के नायक बिरसा मुंडा

'उलगुलान' शब्द कान में पड़ते ही झारखंड के धरतीपुत्रों के मन में आज भी बिजली कौंध जाती है। यह शब्द इतिहास का एक प्रसंग मात्र नहीं है। 'उलगुलान' प्रतिरोध का प्रतीक है। 'उलगुलान' आत्मसम्मान की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रतिनिधि स्वर है। 19वीं सदी का वह आखिरी दशक जब 1857 की क्रांति के विफल हो जाने के बाद 1858 के चार्टर अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश राज औपचारिक रूप से भारत में स्थापित हुआ और फिर धीरे-धीरे ब्रिटिश सत्ता यहाँ अपनी आर्थिक और सामाजिक नीतियों पर अमल करते हुए अपनी जड़ें गहरे जमाने लगी थी। ज़मींदार ब्रिटिश एजेंट बनकर भारत की जनता, विशेषकर हाशिये पर पड़े आदिवासियों को निचोड़ रहे थे। जमींदारों और अदालतों ने छल-प्रपंच से 'खूँटकट्टी' (भूमि के स्वामित्व की आदिवासी अवधारणा) जमींदारी छीनकर उसके स्वामित्व वाले आदिवासियों को रैयत बना दिया। अपनी ही ज़मीनों से बेदखल आदिवासी मजदूरों की तरह हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद अपना पेट नहीं भर पाते थे। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह का अंकुरण हुआ।

इन्हीं परिस्थितियों में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के पन्नों पर अपने शौर्य की अमिट गाथा लिखने वाले क्रांति के एक अग्रदूत झारखंड की धरती पर अवतरित हुए बिरसा मुंडा। आज से 150 वर्ष पूर्व, 15 नवंबर, 1875 को झारखंड के बियाबान वन्यप्रदेश में 'खूँटी' जिले के 'उलीहातू' गाँव में सुगना मुंडा और करमी के पुत्र के रूप में बिरसा का जन्म हुआ। स्वतंत्र विचारों वाले बिरसा देखते-देखते उत्पीड़ित आदिवासियों की आकांक्षाओं का केंद्र बन गए थे। बिरसा ने प्रतिरोध और अस्मिता की रक्षा के लिए लोगों को जागरूक करना शुरू किया। आदिवासियों के बीच अधिकारों की अलख जगाते हुए उन्हें ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेने के लिए संगठित किया। आदिवासियों में क्रांति की लौ जगाना और संगठित होकर लड़ने के लिए प्रेरित करना, एक ऐसा चमत्कार था, जिसे कार्यरूप देकर बिरसा भगवान बन गए। बिरसा ने 25 वर्ष से भी कम की आयु पाई। तेजस्विता उम्र की मोहताज नहीं हुआ करती। बिरसा ने भी इस छोटी-सी जीवन-अवधि में ही मातृभूमि के लिए जो कुछ कर दिखाया, वह इतिहास की अमिट लकीर है। वन्य-औषधियों से चिकित्सा कर लोगों को रोगमुक्त कर देने वाले 20 वर्ष के युवा बिरसा के चमत्कारिक

डॉ. शैलेश कुमार मिश्र

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत) लब्धस्वर्णपदक, एम.ए. (हिंदी) लब्धस्वर्णपदक, पी-एच.डी.

संप्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय संस्कृत कॉलेज, राँची (विनोबा भावे विश्वविद्यालय), तीस वर्षों से इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया में सृजनात्मक सक्रियता।

प्रकाशन : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'शेष कथन', 'पारावार के पार' (दोनों के अनुवादक) सहित नौ पुस्तकें एवं छह संपादित ग्रंथ प्रकाशित।

सम्मान : दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे द्वारा पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल– 7541933637
ईमेल– shail.vbu@gmail.com

व्यक्तित्व से अभिभूत जनता उन्हें अवतारी पुरुष मानने लगी थी और वे 'बिरसा मुंडा' से 'भगवान बिरसा मुंडा' बन गए थे। लोग ऐसा मानते थे कि उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो गया है। लोककल्याण के लिए जीने वाले इस महापुरुष को जनता इतना प्यार करती थी कि बिरसा के एक संकेत पर उनके कितने ही अनुयायी अपनी जान की बाजी लगा देते। बिरसा अपने अनुयायियों के विचारों में रच-बस गए थे। बिरसा के नाम पर 'बिरसाइत पंथ' ही चल पड़ा।

1857 की क्रांति की आग अभी बुझी नहीं थी। बिरसा के नेतृत्व से मुंडा समाज में एक अभूतपूर्व जागृति का संचार हुआ। अपने स्वतंत्र राज्य की परिकल्पना कर रहा मुंडा समाज बिरसा को अपने राजा के रूप में देख रहा था। दिन-प्रतिदिन बिरसा के अनुयायियों की बढ़ती संख्या देखकर अंग्रेजी सरकार के माथे पर बल पड़ गए थे। बिरसा की क्रांतिकारी वाणी का जादुई असर ऐसा था कि हजारों की संख्या में उनके अनुयायी हमेशा उनके आस-पास होते। ब्रिटिश सरकार उन्हें गिरफ्तार करना चाहती थी, पर उनके प्रति उनके अनुयायियों के समर्पण के कारण सरकार बेबस थी। कोई उपाय न देख सरकार ने छल का रास्ता अपनाया। 22 अगस्त, 1895 की रात खूँटी के 'चलकद' गाँव में रात के समय जब बिरसा गहरी नींद की आगोश में थे, पुलिस ने उनके घर की घेराबंदी की और निहत्थे बिरसा को हथकड़ी में जकड़ दिया गया। बिरसा ने अपनी गिरफ्तारी पर कहा, "धोखे से गिरफ्तार करना कायरों का काम है।" बिरसा की गिरफ्तारी से उनके उलगुलान की चिनगारियाँ और भड़क उठीं। जब अंग्रेज सरकार बिरसा को गिरफ्तार कर ले जा रही थी तो अपने भगवान को एक नज़र देख लेने के लिए उनके हजारों चाहने वाले आँखों में आँसू लिये रास्ते में खड़े थे। बिरसा उनका अभिवादन स्वीकार करते और स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी को प्रेरणा के मूक स्वर से उत्साहित करते। खूँटी की अदालत को मुंडाओं ने घेर लिया था, जहाँ उनके भगवान के मुकदमे की कार्यवाही चल रही थी। कर्नल गार्डन ने लोगों को समझाया कि बिरसा को भगवान समझना मूर्खता है, अंधविश्वास है। वह एक सामान्य इनसान है, लेकिन बिरसाइतों ने स्पष्ट कहा कि उनके नेता, उनके भगवान बिरसा हैं, और कोई नहीं। वे धरती-आबा अर्थात् जगत्-पिता हैं। मुंडाओं के आक्रामक रुख को देखते हुए डिप्टी कमिश्नर ने बिरसा को खूँटी से राँची जेल भेज दिया। 30 नवंबर, 1897 को बिरसा जेल से रिहा कर दिये गए। बिरसा को चेतावनी दी गई थी कि वह शांतिपूर्ण जीवन जीएँगे। बिरसा मौन हो गए थे। अंग्रेज सरकार को प्रतीत हुआ कि बिरसा के हृदय में धधकती क्रांति की ज्वाला अब शांत हो गई है, परंतु यह शांति तूफ़ान के पहले की शांति थी। मार्च 1898 में होली के दिन 'सिम्बुआ बुरु' अर्थात् 'सिम्बुआ पहाड़ी' पर तीर-धनुष लिये लगभग 200 लोग जमा हुए। वहाँ ब्रिटिश साम्राज्य का पुतला जलाकर ब्रिटिश राज के विनाश का संकल्प लिया गया।

अब बिरसा ने अंग्रेजी शासकों के विरुद्ध 'उलगुलान' का नारा दिया। मुंडारी भाषा के शब्द 'उलगुलान' का शाब्दिक अर्थ है—तुमुल कोलाहल या महान क्रांति। 09 जनवरी, 1900 को बिरसा और उनके अनुयायी 'सईल रकब' पहाड़ी के निकट 'डोम्बारी बुरु' (डोम्बारी पहाड़ी) पर सभा कर रहे थे। डिप्टी कमिश्नर ने उनसे कहा कि वे हथियार छोड़ दें और वार्ता कर लें। उन्होंने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। डिप्टी कमिश्नर की चेतावनी के बावजूद मुंडाओं ने आत्मसमर्पण नहीं किया। एक क्रांतिकारी, नरसिंह मुंडा ने दूर से ही चिल्लाकर कहा कि हथियार रखने की बारी अंग्रेज सरकार की है, क्योंकि यहाँ हम मुंडाओं का राज है, अंग्रेजों का नहीं। मुंडा लोग रक्त की आखिरी बूँद तक लड़ने को तैयार हैं। उनका क्रांतिकारी रुख देखकर डिप्टी कमिश्नर स्ट्रीटफील्ड तथा कैप्टन रोसे ने फायरिंग का आदेश दे दिया। सभास्थल पर गोलियाँ बरसायी गईं। सैकड़ों लोग इस गोलीबारी में शहीद हुए। यह जलियाँवाला बाग हत्याकांड से पहले घटा उसी तरह का एक क्रूर कांड था। डोम्बारी बुरु अंग्रेजों की क्रूरता का गवाह है। शहीदों की याद में डोम्बारी बुरु में एक शहीद स्तंभ का निर्माण किया गया है, जहाँ प्रत्येक वर्ष 09 जनवरी को मेला लगता है। बिरसा किसी तरह इस गोलीबारी से बचते हुए सिंहभूम की पहाड़ियों की ओर जा निकले। सरकार ने बिरसा पर 500 रुपये का इनाम रख दिया था। इनाम के लोभी कुछ लोगों ने 03 फरवरी, 1900 को चक्रधरपुर के जंगल में छिपे बिरसा को पकड़ लिया और बंदगाँव में डेरा डाले डिप्टी कमिश्नर को सुपुर्द कर दिया। बिरसा को कठोर कारावास की सजा दी गई और राँची जेल में कैद कर दिया गया। जेल में बिरसा का स्वास्थ्य गिरने लगा। 09 जून, 1900 को मुंडाओं के भगवान, उलगुलान के इस नायक ने संसार से विदा ले ली। बिरसा नहीं रहे, पर उनकी क्रांति की ज्वाला धधकती रही। उनके उलगुलान की प्रासंगिकता कायम है। उलगुलान आज भी अत्याचारों के विरुद्ध एक सशक्त उद्घोष है।

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस

11 मई, 1998 का ऐतिहासिक दिन। राजस्थान के पोखरण में आर्मी टेस्ट रेंज में लगातार विस्फोट हुए। यह शक्ति-I मिसाइल का सफल परमाणु परीक्षण था। इस परीक्षण से जुड़े समस्त वैज्ञानिकों के मुख पर विजयी मुसकान और संतोष का भाव था, वहीं राजनेताओं से लेकर आम नागरिक तक इस महान उपलब्धि पर गर्व अनुभव कर रहे थे।

लेकिन यह पहला परीक्षण नहीं था। इससे पूर्व, वर्ष 1974 में प्रथम परमाणु परीक्षण हुआ था, जिसे 'स्माइलिंग बुद्धा' का नाम दिया गया। यह परीक्षण सेना के वरिष्ठ अधिकारियों की निगरानी में किया गया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने इस परीक्षण को 'शांतिपूर्वक परमाणु विस्फोट' का नाम दिया, ताकि शेष विश्व, विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के पाँच स्थायी सदस्यों को शांत (Assuage) किया जा सके।

प्रवीण शर्मा

श्रीमती प्रवीण शर्मा, सेवानिवृत्त सहायक निदेशक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो (गृह मंत्रालय, भारत सरकार) ने अनेक प्रतिष्ठित सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों की साहित्य सामग्री का अनुवाद किया है। पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर लेख प्रकाशित। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'मास्टर दा सूर्य सेन' पुस्तक प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9210125222
ईमेल– sureshsharmakalia@gmail.com

कहा जाता है कि इस सफल परीक्षण के बाद, डॉ. रमन्ना ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती गाँधी से ये शब्द कहे, "Buddha has smiled", चूँकि 18 मई, 1974 को बुद्ध पूर्णिमा मनाई जा रही थी, अतः इस परीक्षण को 'स्माइलिंग बुद्धा' नाम दिया गया। इस परीक्षण की ओर सभी राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित हुआ था।

11 मई, 1998 की पोखरण परमाणु परीक्षण के पश्चात इस शृंखला में दो और परमाणु परीक्षण किये गए। बंगलुरु से पहले स्वदेशी विमान 'हंस-3' का सफल परीक्षण किया गया। साथ ही, इसी दिन 'त्रिशूल' मिसाइल का भी परीक्षण हुआ था। इन परीक्षणों के कारण भारत परमाणु शक्तिसंपन्न चुनिंदा राष्ट्रों के समूह में शामिल हो गया। इस अनूठी उपलब्धि पर प्रत्येक भारतीय गर्व महसूस कर रहा था।

यह सही है कि उस समय, कुछ गिने-चुने देशों के पास परमाणु शक्ति थी। भारत ऐसे देशों के समूह का छठा सदस्य देश बना। अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से शक्तिसंपन्न होने के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी दैनिक जीवन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देते आ रहे हैं तथा आज छात्र समुदाय भी इस ओर प्रेरित हो रहा है। वे इस क्षेत्र को कॅरियर के रूप में अपना रहे हैं।

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस

इन अनूठी उपलब्धियों के उपलक्ष्य में भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 11 मई को 'राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस' घोषित किया। तत्पश्चात्, हर वर्ष भारतीय वैज्ञानिकों, इंजीनियरों एवं टेक्नोक्रेट्स की वैज्ञानिक और तकनीकी, प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों को सम्मानित करने के लिए यह दिवस मनाया जाता है।

वर्ष 2020 में राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस का मुख्य विषय 'स्कूल स्टार्ट-अप्स-युवा शक्ति को नव प्रवर्तन की ओर प्रेरित करना' रहा। वर्ष 2021 में राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस का मुख्य विषय 'सतत् भविष्य के लिए निशान और प्रौद्योगिकी' रहा। वर्ष 2022 में इस दिवस का मुख्य विषय 'सतत् भविष्य के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण' रहा। कोविड-19 विश्व महामारी के समय विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विशेष महत्व रहा। इस दौरान, आधुनिक प्रौद्योगिकी ने असंख्य लोगों की जान बचाई। रोगियों के लिए अत्यावश्यक आर्टिफिशियल ऑक्सीजन के साधन एवं वैक्सीन विपुल मात्रा में मुहैया करायी गई।

वर्ष 2023 में राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस का मुख्य विषय 'स्कूल टू स्टार्ट-अप्स तेजस्वी युवा मन को नव प्रवर्तित (Innovate)

करना' रहा। यह दिवस समाज को याद दिलाता है कि मानव-जीवन में प्रौद्योगिकी कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इस संदर्भ में, प्रतिवर्ष प्रौद्योगिकी विकास बोर्ड एक विषय चुनता है। उसी विषय के आधार पर यह दिवस मनाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मानव-समाज में प्रक्रिया एवं प्रगति सुनिश्चित करने के लिए इस क्षेत्र में निवेश के साथ-साथ नवाचार भी अनिवार्य है। यह बोर्ड इस दिवस के आयोजन में मुख्य भूमिका निभा रहा है। इस बोर्ड द्वारा योग्य व्यक्तियों, संस्थाओं तथा व्यावसायिक संगठनों को राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् तथा अन्य वैज्ञानिक संगठन आदि इस समारोह का हिस्सा बनते हैं। नई दिल्ली में इंडिया गेट के पास कार्यक्रम आयोजित किया जाता है, जिसमें देश के राष्ट्रपति एवं अन्य गणमान्य व्यक्ति उपस्थित होते हैं तथा राष्ट्रपति द्वारा शोधकर्ताओं, विश्लेषकों, भौतिकविदों एवं वैज्ञानिकों को पुरस्कृत किया जाता है तथा उनके सफल आविष्कारों एवं उपलब्धियों की सराहना की जाती है।

भारतीय प्रौद्योगिकी के जनक

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विषय पर विचार-विमर्श किया जाए और भारत के 11वें राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का जिक्र न हो, यह असंभव है। उनके बिना चर्चा-परिचर्चा अधूरी रह जाती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक के रूप में, उन्होंने भारत के मिसाइल और अंतरिक्ष कार्यक्रमों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। देश में वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के लिए उन्हें 'मिसाइल मैन' के रूप में जाना जाता है। वर्ष 1998 में नव भारतीय सेना, पोखरण परीक्षण रेंज द्वारा पाँच विस्फोट लगातार किये गए थे। इस महत्वपूर्ण परीक्षण का नेतृत्व डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने ही किया था।

इस अवसर पर सरकार विज्ञान और प्रौद्योगिकी के भविष्य पर चर्चाएँ, कार्यक्रम, वार्ताएँ आदि आयोजित करती है। छात्र-छात्राओं को अपने ज्ञान और प्रतिभा को प्रदर्शित करने के अवसर देने हेतु स्कूल और कॉलेज विभिन्न कार्यक्रम आयोजित करते हैं। साथ ही, सोशल मीडिया पर प्रासंगिक जानकारी साझा की जाती है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इन प्रयासों के फलस्वरूप आज प्रौद्योगिकी जीवन के हर पहलू को छू रही है। जल, थल, नभ, कुछ भी प्रौद्योगिकी से अछूता नहीं रहा। व्यापार, वाणिज्य, प्रकृति, मीडिया, शिक्षा, पर्यटन, मनोरंजन, संचार, सूचना आदि समस्त क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी का प्राधान्य हो रहा है। जीवन में प्रगति का आधार-प्रौद्योगिकी बन रही है। व्यक्ति, राष्ट्र, विश्व प्रत्येक स्तर पर विकास तभी संभव माना जा रहा है जब प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा हो। स्वयं सरकारें भी प्रौद्योगिकी के बल पर राष्ट्र-निर्माण, विकास का दावा करते हुए प्रत्येक क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की ओर उन्मुख विभिन्न नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार कर रही हैं।

यह सही है कि प्रौद्योगिकी के कारण जीवनयापन सुगम और सुविधाजनक हो रहा है, मानव-समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर है। नए-नए आविष्कारों को व्यावहारिक जीवन में उपयोगी, सार्थक बनाने के लिए प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण, मजबूत, संबल सेतु बन चुकी है। आज का युग 'बटन' दबाने का युग है, जहाँ प्रत्येक कार्य पलक झपकते संपन्न होने की आशा की जाती है। चाहे दिन-प्रतिदिन के कार्य हों, या धरती, आकाश, समुद्र तक पहुँचने की महत्वाकांक्षाएँ हों।

इस प्रौद्योगिकीय विकास के कारण मानव-जीवन अधिक जटिल हो गया है। यह सच्चाई है कि आज परिवार, समाज, विश्व, पर्यावरण, नैतिक पक्ष आदि से जुड़ी विकराल समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। इनसे मानव ही नहीं, समस्त जड़-चेतन-जगत एवं प्रकृति के अस्तित्व के सामने खतरा किसी भयावह दैत्य के समान विराट रूप लेता जा रहा है, लेकिन मनुष्य की आलस भरी और सुविधाजनक जिंदगी की इस चाह को ओसामा जोरेज ने चेताया है :

"यूरेनियम से बढ़ता हुआ कैंसर अलग
और बारिशें न होने का मातम जुदा करें।"

इसीलिए, अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा है, "यह स्पष्ट हो गया है कि आज प्रौद्योगिकी मानवता से कहीं आगे निकल गई है।"

हमें ऐसा अनुभव होता है कि सब कुछ अपने आप हो जाएगा, लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि इनसान हाथ-पैर नहीं हिलाना चाहता, लेकिन उसे 'बटन' तो स्वयं ही दबाना होगा। रोबोट से काम करवाने के लिए उस पर नज़र तो रखनी होगी। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"दोस्तो!
जिंदगी एक गणित जरूर है
मगर इसमें
ज्यादा गुणा-भाग भी ठीक नहीं।"

अंत में यह कहना समीचीन होगा कि महान वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकीविदों के मन में हमेशा उथल-पुथल चलती रहती है। उनके सामने ये प्रश्न हमेशा रहते हैं कि 'ऐसा क्यों होता है?' 'इससे बेहतर क्या हो सकता है?' इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की अनवरत यात्रा चलती रहती है, परंतु प्रौद्योगिकी प्रगति तभी सार्थक होगी, जब—

"ॐ द्युलोक में शांति हो, अंतरिक्ष में शांति हो, पृथ्वी पर शांति हो,
औषध में शांति हो, वनस्पति में शांति हो, सभी देवगणों में शांति हो,
ब्रह्म में शांति हो, सर्वत्र शांति हो, चारों ओर शांति हो।
ॐ शांति शांति शांति॥"

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षंशान्ति, पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्ति, सर्वंशान्तिः, शान्तिरेवशान्ति, सा माशान्तिरेधि॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ज्ञानतीर्थ

सप्रे संग्रहालय का डिजिटलीकरण

संग्रहालय यानी इतिहास को सँजोने और सहेजने का विवेक। पत्रकारिता में इस विवेक का एकमात्र परिचय 'सप्रे संग्रहालय' है। भोपाल स्थित इस संग्रहालय में भारतीय पत्रकारिता से संबद्ध दुर्लभ सामग्री संचित है। इसके संस्थापक-संयोजक हैं, पत्रकारिता के इतिहास के विशेषज्ञ विजयदत्त श्रीधर। रवींद्रनाथ ठाकुर ने जिस तरह शांतिनिकेतन की स्थापना की, मदन मोहन मालवीय ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की, उसी तरह विजयदत्त श्रीधर ने 19 जून, 1984 को भोपाल में 'सप्रे संग्रहालय' की स्थापना की। 1982-83 में मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी के लिए 'मध्य प्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास' पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करते हुए संदर्भ सामग्री जुटाने के लिए विजयदत्त श्रीधर को मध्य प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर जाना पड़ा। तभी उन्हें इस संकट का भान हुआ कि अनेक विद्यानुरागी परिवारों के पास समाचार पत्र-पत्रिकाओं, अन्य दस्तावेजों और ग्रंथों का दुर्लभ संग्रह है और जर्जर पृष्ठों में संचित वह राष्ट्रीय बौद्धिक धरोहर नष्ट हो सकती है। व्याकरणाचार्य कामताप्रसाद गुरु के पुत्र पं. रामेश्वर गुरु (जबलपुर) ने विजयदत्त श्रीधर को यह प्रेरणा दी कि इस सामग्री को एक छत के नीचे संकलित और संरक्षित करने की जरूरत है, ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए वह ज्ञान-कोश बचाया जा सके। श्रीधर जी ने 19 जून, 1984 को भोपाल के ऐतिहासिक कमलापति महल के पुराने बुर्ज से माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय शुरू किया। 19 जून, 1996 को सप्रे संग्रहालय अपने भवन में स्थानांतरित हुआ। शुरू में संग्रहालय के पास महज 73 पत्र-पत्रिकाओं के 350 अंक थे। आज सप्रे संग्रहालय में 25,997 शीर्षक समाचार पत्र और पत्रिकाएँ; 1,16,393 संदर्भ ग्रंथ; 1,467 अन्य दस्तावेज; 500 लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों-पत्रकारों-राजनेताओं के 5,000 से अधिक पत्र; 163 गजेटियर; 345 अभिनंदन ग्रंथ; 620 शब्दकोश; 866 रिपोर्ट और 784 पांडुलिपियाँ संगृहीत हैं।

सप्रे संग्रहालय के संस्थापक पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर

कृपाशंकर चौबे

जन्म : 1964, बलिया (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा : हिंदी में एम.ए., 'हिंदी पत्रकारिता : परिवर्तन और प्रवृत्तियाँ' पर पी-एच.डी.

संप्रति : प्रोफेसर एवं अध्यक्ष; जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

प्रकाशन : 13 पुस्तकें प्रकाशित, 10 संपादित ग्रंथ प्रकाशित। इसके अलावा पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा प्रकाशित दस स्कूली पाठ्य पुस्तकों का संपादन। 2003 से 2006 तक बांग्ला मासिक 'भाषाबंधन', 2020 से 'बहुवचन' के समन्वयक संपादक। हिंदी, बांग्ला और मराठी में स्तंभ लेखन।

संपर्क : मोबाइल– 9836219078
ईमेल– drkschaubey@gmail.com

378 पांडुलिपियाँ हस्तलिखित हैं, जो 500 साल तक पुरानी हैं। पुरानी पांडुलिपियों में मनुस्मृति, धर्म प्रवृत्ति, समयसार, संहिताष्टक, कुंडार्कमूल, मुहूर्त चिंतामणि, श्री सूक्तक, गृहलाघव, तत्वप्रदीप, कृत्य मंजरी, भाव प्रकाश, मिताक्षरा, झाँसी को राइसो, श्रुतिबोध जैसी 1509 से लेकर 1925 तक की पांडुलिपियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामविवाह मंगल, श्री राम गीतावली,

प्रांगन गीता एवं श्री उमा शंभु विवाह मंगल की हस्तलिखित पांडुलिपियाँ भी संग्रहालय में उपलब्ध हैं। दुष्यंत कुमार की हस्तलिखित पांडुलिपियाँ और पत्र भी यहाँ संरक्षित हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, वृंदावनलाल वर्मा, सेठ गोविंददास, सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्रानंदन पंत, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र और नंददुलारे वाजपेयी के पत्र भी यहाँ संरक्षित हैं। खंडवा में माखनलाल चतुर्वेदी के अनुज बृजभूषण चतुर्वेदी, दिल्ली में जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, बंगलुरु में नारायण दत्त, पटना में डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, जबलपुर में रामेश्वर गुरु ने अपनी धरोहर सप्रे संग्रहालय को सौंपी। देशभर में ऐसे 1,000 से अधिक परिवार हैं, जिनकी बौद्धिक धरोहर ने सप्रे संग्रहालय को ज्ञान तीर्थ बनाया है।

सप्रे संग्रहालय दाताओं के नाम से ही उनकी सामग्री को संरक्षित करता है। अब तक 900 से अधिक शोधार्थी अपने प्रबंधों के लिए इस संग्रहालय की सामग्री का लाभ उठा चुके हैं। सप्रे संग्रहालय में शोध संदर्भ के लिए महत्वपूर्ण सामग्री तीन करोड़ पृष्ठों से अधिक है। संचित सामग्री में हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती भाषाओं की सामग्री बहुतायत में है। श्रीधर जी अब संग्रहालय का डिजिटलीकरण कर रहे हैं। डिजिटलीकरण का काम तेजी से चल रहा है। अब तक 12 लाख पृष्ठों का डिजिटलीकरण हो चुका है।

सप्रे संग्रहालय भारत में अपनी तरह का एकमात्र न्यूज म्यूजियम है। अनेक दुर्लभ पत्र और उनके प्रवेशांक तथा कई ऐतिहासिक पत्रिकाओं की पूरी फाइलें यहाँ उपलब्ध हैं। संग्रहालय में संचित सामग्री का अब तेजी से डिजिटलीकरण हो रहा है। संग्रहालय में मौजूद सामग्री के आधार पर श्रीधर जी ने कई महत्वपूर्ण ग्रंथ हिंदी जगत को भेंट किए हैं। श्रीधर जी ने दो खंडों में 'भारतीय पत्रकारिता कोश' लिखा है। पहले खंड में 1780 से 1900 तक और दूसरे खंड में 1901 से 1947 तक की भारतीय पत्रकारिता का कालक्रमानुसार इतिवृत्त दर्ज है। भारत में सभी भाषाओं के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का प्रामाणिक वृत्तांत लिपिबद्ध करने के साथ-साथ सन् 1947 तक के भारत के पूरे भूगोल को भी इसमें श्रीधर जी ने समाहित किया है। श्रीधर जी ने 'पहला संपादकीय' पुस्तक में 1826 से लेकर 2004 के बीच की अवधि की 20 प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं से उनकी पहली संपादकीय टिप्पणी प्रस्तुत की है। उस किताब की लंबी 'प्रस्तावना' में श्रीधर जी ने हिंदी पत्रकारिता की पूरी कहानी कह दी है। विजयदत्त श्रीधर की किताब 'माधवराव सप्रे रचना संचयन' साहित्य अकादेमी ने जून 2017 में प्रकाशित की। वह किताब एक दृष्टांत है कि चयन एवं संपादन कैसे करना चाहिए। 'माधवराव सप्रे रचना संचयन' 452 पृष्ठों की किताब है और उसमें सप्रे जी की सभी महत्वपूर्ण रचनाओं को शामिल किया गया है। 'छत्तीसगढ़ मित्र' के पुरोधा संपादक के रूप में सप्रे जी ने समालोचना विधा को हिंदी में स्थापित किया था तो बाल गंगाधर तिलक के ओज और तेज का हिंदी में संचार करने के लिए 'हिंदी केसरी' निकाला था। सप्रे जी कोशकार भी थे। सप्रे जी की रचनाओं में प्रवेश करने की जमीन 'प्राक्कथन' से तैयार होती है। 'प्राक्कथन' में श्रीधर जी ने निबंध, समालोचना, अनुवाद, अर्थशास्त्रीय चिंतन और कहानी उप शीर्षकों के तहत इन

विधाओं में सप्रे जी के अवदान तथा उनके सृजनात्मक वैशिष्ट्य को रेखांकित किया है। श्रीधर जी की दूसरी संचयन प्रस्तुति 'नारायण दत्त मनीषी संपादक' पुस्तक के तीन खंड हैं। पहले खंड में विश्वनाथ सचदेव तथा जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी के परिचयात्मक आलेख और 'बनारसीदास चतुर्वेदी के चुनिंदा पत्र' ग्रंथ पर कृष्ण बिहारी मिश्र की

समीक्षा है। दूसरे खंड में नारायण दत्त जी के पत्रकारिता विषयक 15 लेखों, समीक्षा तथा व्याख्यानों का संचयन किया गया है। 'हिंदी पत्रकारिता : कुछ प्रवृत्तियाँ, स्थितियाँ और चिंताएँ', 'शुद्ध हिंदी और हिंदी पत्रकार' तथा 'गणेश शंकर विद्यार्थी की देन के प्रति हम कितने जागरूक' शीर्षक नारायण दत्त जी के आलेख एक गहरे नैतिक आवेग में लिखे गए हैं। 'प्रणाम' शीर्षक संपादकीय में विजयदत्त श्रीधर ने याद किया है कि 1989 में नारायण दत्त जी ने उनकी शोध पुस्तक 'मध्य प्रदेश में पत्रकारिता का उद्भव और विकास' को कैसे मँगवाया और भाषा फीचर सेवा से उसकी समीक्षा प्रसारित करवाई, जिसे कई अखबारों ने छापा और उसके बाद कैसे नारायण दत्त जी से श्रीधर जी की और सप्रे संग्रहालय की निकटता बढ़ी। 'मूल्य मीमांसा' पुस्तक में विजयदत्त श्रीधर ने कृष्ण बिहारी मिश्र की प्रतिनिधि रचनाओं का संचयन किया है। मिश्र जी को श्रीधर जी 'साहित्य मनीषी' कहते हैं। 'मूल्य मीमांसा' के संचयन में भी श्रीधर जी ने गहरी सूझ-बूझ का प्रमाण दिया है। कृष्णबिहारी मिश्र के कृतित्व पर तीन लेख दिये गए हैं, जिनमें नारायण दत्त जी का लिखा 'गुण ज्येष्ठ' और राधावल्लभ त्रिपाठी का 'परकाया प्रवेश से उपजा एकालाप' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साहित्य में मिश्र जी की बहुआयामी उपस्थिति जीवनी, निबंध, संस्मरण विधाओं तथा पत्रकारिता के इतिहास के विशेषज्ञ के रूप में है। विभिन्न विधाओं में मिश्र जी की सृजनशीलता की झाँकी 'मूल्य मीमांसा' पुस्तक में मिल जाती है। इसमें मिश्र जी के जीवनी साहित्य (कल्पतरु की उत्सव लीला) का मुखड़ा 'रसे बशे राखिश माँ', दो निबंध 'आंगन की तलाश' और 'अराजक उल्लास', एक संस्मरण 'लालित्य की अंतरंग आभा' (हजारीप्रसाद द्विवेदी पर) तथा पत्रकारिता विषयक उनके छह आलेख संकलित किये गए हैं।

विजयदत्त श्रीधर की एक अन्य महत्वपूर्ण संपादित पुस्तक है—'महामानव गांधी'। इसी शीर्षक से अपने आलेख में श्रीधर जी कहते हैं, '19वीं शताब्दी गांधी जी के जन्म की, 20वीं शताब्दी कर्म की और 21वीं शताब्दी विकल्प की है। हिंसा-द्वेष-कलह-क्लेश की मारी इस दुनिया की मुक्ति और अस्तित्व रक्षा का उपाय गांधी मार्ग का अवलंबन ही है।' इस किताब में कुल 19 लेख संकलित हैं। प्रमुख लेखकों में शामिल हैं—विनोबा, नेताजी, रमेशचंद्र शाह, कुमार प्रशांत, अरविंद मोहन, संत समीर, अमृतलाल वेगड़, सुंदरलाल श्रीधर, मीनाक्षी नटराजन, जयश्री पुरवार, कपूरमल जैन और कमल किशोर गोयनका। इसके अलावा, सोहनलाल द्विवेदी की कविता 'युगावतार गांधी' भी भीतरी कवर पर प्रकाशित की गई है। गांधी जी की आत्मकथा का अंश और उनकी आखिरी वसीयत भी दी गई है। 'जब राष्ट्रनायक ने राष्ट्रपिता से आशीर्वाद माँगा' शीर्षक आलेख से पता चलता है कि आजादी की लड़ाई में नेताजी स्वयं गांधी की शुभकामनाओं के कितने आग्रही थे। बृजमोहन गुप्त ने 'बापू का पहला रेडियो प्रसारण' शीर्षक लेख में आँखों देखा हाल ही बता दिया है।

समाचार पत्र संग्रहालय की स्थापना, पत्रकारिता विषयक शोध एवं इतिहास प्रलेखन के प्रामाणिक प्रयत्नों तथा सामाजिक सरोकारों की पत्रकारिता के लिए विजयदत्त श्रीधर को 2012 में भारत सरकार ने पद्मश्री अलंकरण से सम्मानित किया था। श्रीधर जी माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के शोध निदेशक भी रहे और उस प्रकल्प के तहत 80 किताबों का प्रकाशन हुआ। श्रीधर जी की वृत्ति पत्रकारिता ही रही है। उन्होंने 1974 में भोपाल से प्रकाशित 'देशबंधु' से विधिवत पत्रकारिता प्रारंभ की थी। उसके चार साल बाद 1978 में वे 'नवभारत' से जुड़े। वहाँ उन्होंने 23 वर्ष का लंबा कार्यकाल बिताकर संपादक के पद से अवकाश लिया। उनके कार्यकाल में 'नवभारत' शीर्ष पर पहुँच गया था। श्रीधर जी ने 'नवभारत' को सबसे अधिक मजबूत आंचलिक क्षेत्रों में ही किया। आंचलिक पत्रकारों के लिए उन्होंने 1976 में 'मध्य प्रदेश आंचलिक पत्रकार संघ' की स्थापना की। पत्रकारिता और जनसंचार पर केंद्रित मासिक शोध पत्रिका 'आंचलिक पत्रकार' का संपादन और प्रकाशन भी सितंबर 1981 में प्रारंभ किया। इस पत्रिका ने कई विशेषांक निकाले, जैसे—गुलामी के खिलाफ कलम और कागज का जेहाद, राष्ट्रीय आंदोलन और पत्रकारिता, प्रतिबंधित पत्र-पत्रिकाएँ, हिंदी पत्रकारिता के 175 वर्ष, मध्य प्रदेश में पत्रकारिता के 150 वर्ष, सरस्वती, छत्तीसगढ़ मित्र, विज्ञान लेखन कौशल और चुनौतियाँ, महिला पत्रकारिता, गणेश शंकर विद्यार्थी, द्वारकाप्रसाद मिश्र, माखनलाल चतुर्वेदी, माधवराव सप्रे, झाबरमल्ल शर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गणेश मंत्री। वैसे, 'आंचलिक पत्रकार' का हर अंक ही अपने-आप में विशेषांक होता है। इसीलिए विद्यानुरागियों को हर महीने बेसब्री से इसकी प्रतीक्षा रहती है। शोध और शोध सामग्री के संकलन-संरक्षण के प्रति श्रीधर जी की गहरी संलग्नता दरअसल ज्ञान के प्रति उनके सात्विक समर्पण का प्रमाण है।

भ्रमर
शताब्दी स्मरण

सन् 1920 में बंगाल में हुए कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन के बाद हिंदी पत्रकारिता की तीन बड़ी घटनाएँ एक साथ घटित हुईं। प्रथम, काशी में दैनिक 'आज' का प्रकाशन; द्वितीय, गोरखपुर में 'गीता प्रेस' की स्थापना तथा तृतीय, बरेली में 'राधेश्याम प्रेस' की शुरुआत। पंडित राधेश्याम कथावाचक इस समय पारसी थियेटर के लोकप्रिय लेखक तो थे ही, बल्कि एक नई तर्ज़ पर लिखी उनकी 'रामायण' ने उन्हें पर्याप्त यश और धन भी प्रदान किया था। वैचारिक स्तर पर तीनों प्रकाशनों की दृष्टि एक ही थी, लेकिन नीतियों में अंतर था। कथावाचक जी के पौराणिक और धार्मिक ग्रंथों के पीछे सम्राट विरोधी स्वर को अंग्रेजी सरकार का सेंसर पकड़ने में असफल रहा। उन्होंने अपने विचारों को प्रखरता प्रदान करने हेतु 'भ्रमर' पत्रिका का श्रीगणेश अक्तूबर 1922 में किया। गोपीवल्लभ उपाध्याय, उदयशंकर भट्ट, विश्वंभरनाथ शर्मा, प्रवासीलाल वर्मा और पंडित रामनारायण पाठक जैसे संपादकों की छत्रच्छाया में इसका प्रकाशन आठ वर्षों (1922 से 1929) तक हुआ। 'भ्रमर' पत्रिका के लेखकों में प्रेमचंद, रामधारी सिंह 'दिनकर', यशपाल, श्याम नारायण पाण्डेय, परिपूर्णानंद वर्मा, श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जैसे नाम शामिल थे। 'भ्रमर' की प्रतियाँ नेपाल, अफगानिस्तान, श्रीलंका (सीलोन), मेसोपोटामिया, इंग्लैंड, जापान तथा चीन तक जाती थीं। अपनी उत्कृष्ट छपाई, साहित्य तथा विज्ञापनों की प्रसिद्धि के कारण यह नौ हजार विज्ञापनदाताओं के पास सीधे पहुँचती थी। 'भ्रमर' की कुल 25 हजार प्रतियाँ प्रकाशित होती थीं। अंत के कुछ वर्षों में इसमें रंगीन चित्र प्रकाशित होने लगे थे। पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये था।

प्रेमचंद ने जब 'हंस' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया तो इसके प्रथमांक, मार्च 1930 में लिखा, 'हमारे अथक परिश्रम के अलावा 'हंस' की ग्राहक वृद्धि का एक बड़ा कारण यह भी है कि बरेली से निकलने वाले 'भ्रमर' के ग्राहक हमें मिल गए हैं।' लेकिन 'भ्रमर' के अवदान की भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में चर्चा न के बराबर है। अम्बिका प्रसाद वाजपेयी द्वारा लिखित पुस्तक

अजय कुमार शर्मा

जन्म : 1966, बरारी, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : हिंदी पत्रकारिता में परास्नातक डिप्लोमा

लेखन : चार दशकों से देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य, संस्कृति, नाटक, इतिहास, सिनेमा पर निरंतर लेखन।

संप्रति : दिल्ली के साहित्य संस्थान में संपादन कार्य।

संपर्क : मोबाइल– 9868228620

ईमेल– ajayksharma66@gmail.com

'समाचार पत्रों का इतिहास', जो ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित है, के द्वितीय संस्करण (1986) के पृष्ठ 306 पर अंकित है, 'आश्विन संवत् 1979 के वि. पूर्णिमा के अर्थात् अक्तूबर 1922 को विविध-विषय-विभूषित मासिक 'भ्रमर' (साइज 9X6 इंच) का प्रकाशन बरेली के राधेश्याम पुस्तकालय से सर्वश्री गोपीवल्लभ उपाध्याय एवं पं. रामनारायण पाठक के संपादकत्व में राधेश्याम कथावाचक ने प्रकाशित किया।' राधेश्याम प्रेस, बरेली से 'भ्रमर' पत्रिका का प्रथमांक अक्तूबर 1922 पूर्णिमा के दिन हुआ था। पत्रिका में ध्येय वाक्य के रूप में पंडित राधेश्याम कथावाचक की ये काव्य पंक्तियाँ 'अधीर' नाम से प्रकाशित हुई थीं—

विश्व वाटिका में विचरण कर, पीना पुष्पों का मकरंद।
लेकिन 'भ्रमर' भूल मत जाना, प्रभु-पद पंकज का आनंद।
सच्चे सुख का धाम वही है, वहीं ठहरना हो निस्पंद।
राधा-माधव की गुण गाथा, गुन-गुनकर गाना स्वच्छंद।

'भ्रमर' विविध विषय विभूषित सचित्र मासिक पत्रिका थी। 'भ्रमर' पत्रिका युगीन पत्रकारिता से अलग नजरिया लेकर चली थी। 'भ्रमर' के पहले संपादक गोपीवल्लभ उपाध्याय थे। जुलाई 1923 से इसका संपादन रामनारायण पाठक (1894-1976) ने सँभाला और इसके अंत 1929 तक इसका संपादन कार्य करते रहे। राधेश्याम कथावाचक की वजह से पत्रिका का चोला धार्मिक प्रतीत होता था, लेकिन राष्ट्रीय चेतना और समाज सुधार ही उसका मुख्य लक्ष्य था। 'भ्रमर' के संपादकीय और उसमें प्रकाशित विभिन्न नियमित स्तंभों और रचनाओं से यह नीति और स्पष्ट हो जाती है। कहानी, कविता और लेखों के अलावा इस पत्रिका के नियमित कॉलम थे—प्राप्ति स्वीकार, संपादक की डायरी, अनोखे समाचार और विनोद वाटिका। 'भ्रमर' में गुजराती, मराठी और बाँग्ला भाषा के अनुवाद भी प्रकाशित होते थे। सभी कॉलम संपादकीय विभाग में बतौर डिजाइनर कार्यरत प्रवासीलाल वर्मा देखा करते थे।

'प्राप्ति स्वीकार' में 'भ्रमर' के समय निकल रही सहयोगी पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा की जाती थी। इसमें उन पत्रिकाओं के संपादकों, उनकी सामग्री और विशेषांकों, उनके वार्षिक मूल्यों आदि की महत्वपूर्ण और उपयोगी जानकारी देने के साथ ही इसमें प्रकाशित सामग्री की जमकर ख़बर ली जाती थी। इसके उपलब्ध अंकों में हिंद केसरी (साप्ताहिक), काशी, चाँद (मासिक), प्रयाग, भारत मित्र (साप्ताहिक), मॉडर्न रिव्यू, नागरी प्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक), माधुरी (मासिक), हिंदूपंच, मतवाला (साप्ताहिक), बालसखा, सुधा (मासिक), विशाल भारत, त्यागभूमि, अजमेर, नवयुग (मासिक), कल्याण का तो जिक्र है ही, कुछ ऐसे पत्र-पत्रिकाओं का भी उल्लेख है, जो शायद ही कहीं दर्ज हों, जैसे—आकाशवाणी (साप्ताहिक), लाहौर; भारत गौ हितेषी (साप्ताहिक), दिल्ली; वैद्य, मुरादाबाद; उपन्यास कुसुम (मासिक), काशी; कर्तव्य (साप्ताहिक), इटावा;

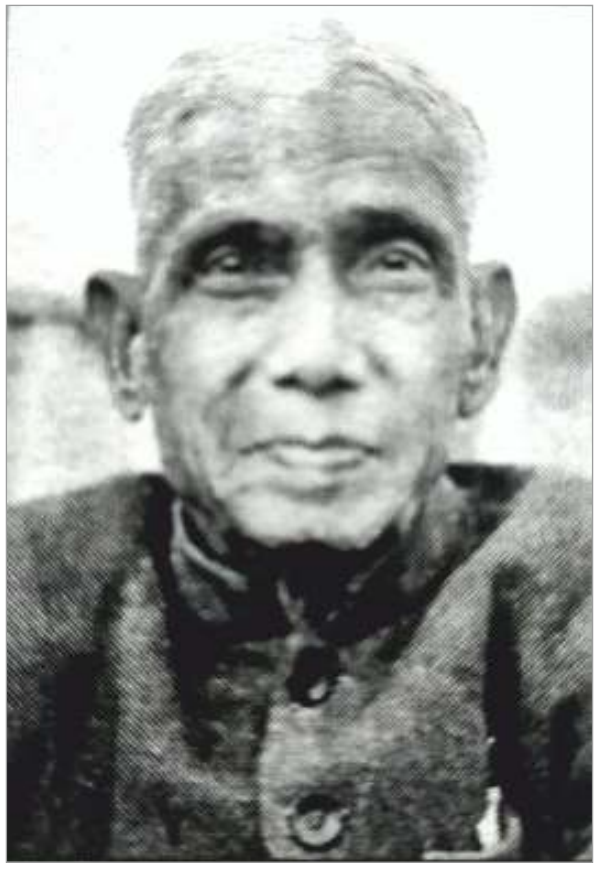

संपादकाचार्य : पं. रामनारायण पाठक

मस्ताना जोगी, लाहौर; देश भक्त, मैनपुरी; शिक्षा प्रभाकर, अलीगढ़; ब्राह्मण सर्वस्व, इटावा; कल्पवृक्ष, उज्जैन; लोकमत, उरई; मातृभूमि, मेरठ; युवक (मासिक), पटना; प्रेम विलास, हरिद्वार आदि। इस कॉलम में कुछ प्रकाशित पुस्तकों का भी जिक्र है और कुछ विदेशी पत्रिकाओं का भी जिक्र है।

'संपादक की डायरी' नाम से प्रकाशित स्तंभ में पूरे माह की प्रमुख घटनाओं का जिक्र हुआ करता था। इसमें देश के ही नहीं, विदेश के समाचार भी प्रकाशित होते थे, जैसे 'भ्रमर' के नवंबर 1927 के समाचारों की सूची में प्रकाशित मुख्य समाचार हैं—01 नवंबर—'यू.पी. कौंसिल में स्त्रियों को निर्वाचन का अधिकार', 05 नवंबर—'संयुक्त राष्ट्र में अमेरिका में भीषण बाढ़', 08 नवंबर—'साइमन कमीशन की नियुक्ति' आदि। 'विनोद वाटिका' स्तंभ प्रवासीलाल वर्मा, 'विनोदी लाल' उपनाम से लिखते थे। इसमें संवादों और लघु कहानी आदि के आधार पर समाज और संस्कृति पर कटाक्ष किए जाते थे। उस काल में पत्र-पत्रिकाओं की पहचान उसकी संपादकीय टिप्पणियों के आधार पर बनती थी। 'भ्रमर' में प्रकाशित संपादकीय टिप्पणियों की भाषा में चिंतन और चुटीलेपन की झलक है। गोपीवल्लभ उपाध्याय के संपादकत्व में 'भ्रमर' में संपादकीय टिप्पणियाँ नहीं होती थीं। इसका आरंभ रामनारायण पाठक जी के

संपादन में वर्ष 1923 से ही शुरू हुआ। यहाँ संपादकीय देना तो संभव नहीं है, लेकिन उनके कुछ शीर्षकों से अंदाजा लगाया जा सकता है कि किस तरह उन्होंने देश-विदेश और भारतीय समाज की नब्ज़ को पकड़ा था। ये शीर्षक हैं—नाभा नरेश का राज त्याग, अखिल भारतीय हिंदू महासभा, पूर्वी अफ्रीका में भारतवासियों का दुख, गोस्वामी तुलसीदास जी की स्मृति, हिंदू महासभा में बौद्धाचार्य, माधुरी का भ्रम, बेचारा मनुष्य, दिल्ली में विशेष कांग्रेस, करेंसी नोट और स्टांपों की

‘भ्रमर’ के कई अंकों में ‘बिस्मिल’ नाम से कई कविताएँ हैं। इन्हें पढ़कर कहीं-कहीं रामप्रसाद बिस्मिल की कविताओं का भ्रम होता है, लेकिन प्रयाग (इलाहाबाद) के कवि सुखदेव प्रसाद सिंह ‘बिस्मिल’ उपनाम से उर्दू में लिखते थे। वे सरकारी मुलाज़िम तथा नूरनारवी शायर के शिष्य थे। बरेली के मशहूर शायर लाल मदनलाल ‘दाना’ ने ‘बिहारी सतसई’ का उर्दू अनुवाद ‘गुल्जारे बिहारी’ नाम से किया था।

छपाई, कमीशन की धूम, नया सीमा प्रांत, मद्रास में क्या हुआ, हकीम जी का शरीर पात, पूर्वोत्तर सीमा प्रांत, बदबखत इराक, पब्लिक स्कूल, अपव्यय, गवर्नर की फूहड़ बात, उन्नति के अजीब उपाय, अनुचित लालसा, मंत्रियों का इस्तीफा, चीफ जस्टिस का भ्रम, फिजी में अपने भाई, दो हिंदी भक्तों का स्वर्गवास, कश्मीर की प्रजा और इलाहाबाद विश्वविद्यालय और हिंदी, आदि।

इन संपादकीयों के आधार पर कहा जा सकता है कि इनका उद्देश्य भारत के गौरव की वृद्धि, देश की प्रगति के कामों में सहयोग, देशवासियों में स्वाभिमान का संचार, देश के लिए हर प्रकार से स्वतंत्रता पाना ही नहीं, अपितु शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों में ही नहीं, कृषि व्यवसाय आदि में भी देश की प्रगति सुनिश्चित करना था। 17 नवंबर, 1928 को लाजपत राय की मृत्यु पर ‘भ्रमर’ ने लिखा, ‘लालाजी के जिस कार्य से सरकार विफल हो उठी थी अब दूने जोर-शोर से किया जाए। प्राण के बदले प्राण लेना तुच्छ कार्य है।’ ‘भ्रमर’ क्रांति के साथ शांति का समर्थक था।

यदि ‘भ्रमर’ में प्रकाशित कविताओं का विश्लेषण करें तो उसकी वर्ष 1922, 23, 27, 28 तथा 29 की फाइलों के खँगालने पर चौंकाने वाली कविताएँ प्राप्त होती हैं। श्रीधर पाठक, श्यामनारायण पाण्डेय, गोपीवल्लभ उपाध्याय, रामधारी सिंह ‘दिनकर’, चण्डीप्रसाद हृदयेश, प्रियम्वदा, श्रीयुक्त नयन कमल, अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’, उदयशंकर भट्ट, पं. राधेश्याम कथावाचक और न जाने कितने कवि नाम हैं। सभी कविताएँ भक्ति-भावना, देशप्रेम, समाज सुधार तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का पक्ष लेकर लिखी गई हैं। ‘भ्रमर’ के कई अंकों में ‘बिस्मिल’ नाम से कई कविताएँ हैं। इन्हें पढ़कर कहीं-कहीं रामप्रसाद बिस्मिल की कविताओं का भ्रम होता है, लेकिन प्रयाग (इलाहाबाद) के कवि सुखदेव प्रसाद सिंह ‘बिस्मिल’ उपनाम से उर्दू में लिखते थे। वे सरकारी मुलाज़िम तथा नूरनारवी शायर के शिष्य थे। बरेली के मशहूर शायर लाल मदनलाल ‘दाना’ ने ‘बिहारी सतसई’ का उर्दू अनुवाद ‘गुल्जारे बिहारी’ नाम से किया था। ‘भ्रमर’ के प्रवेशांक से यह अनुवाद क्रमशः प्रकाशित हुआ। बीच-बीच में व्यवधान आया, लेकिन यह क्रम नहीं रुका। एक उदाहरण देखें—

दोहा

दुरै न निघरघटौ दिए, यह रावरी कुचाल।
विष-सी लागत है बुरी, हँसी खिसी की लाल॥

उर्दू टीका

सनम है ज़हर-सी मुझको, हँसी यह बेहयाई की।
नहीं छिपती बुरी चालें, तेरी रग़ड़ीं बयानी से॥

‘भ्रमर’ में प्रकाशित कुछ प्रमुख रचनाकारों के लेख, कहानी आदि की चर्चा करें तो कुछ प्रमुख नाम और उनके शीर्षक हैं—राधेश्याम कथावाचक का लेख, जो उन्होंने ‘अधीर’ के छद्म नाम से लिखा था, ‘बसंत की डाली और तू कहाँ है?’ पं. रामनारायण पाठक का लेख ‘भूतलीला’, महावीर प्रसाद द्विवेदी का लेख ‘क्रामवेल की कथा’, भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानी ‘पंखेवाली’, प्रेमचंद की कहानी ‘दार्शनिक की होली’, उदयशंकर भट्ट शास्त्री का लेख ‘आर्य सभ्यता तथा नवरस पुस्तक की समीक्षा’, सेठ सोहराबजी फ्रामजी ओगरा का लेख ‘भारत में पारसी’, ललित गोस्वामी द्वारा स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्त पर लिखा लेख, कविवर ‘निराला’ की कविता पर भुवनेश प्रसाद सिंह ‘भुक्न’ का आलेख आदि। कुछ रोचक

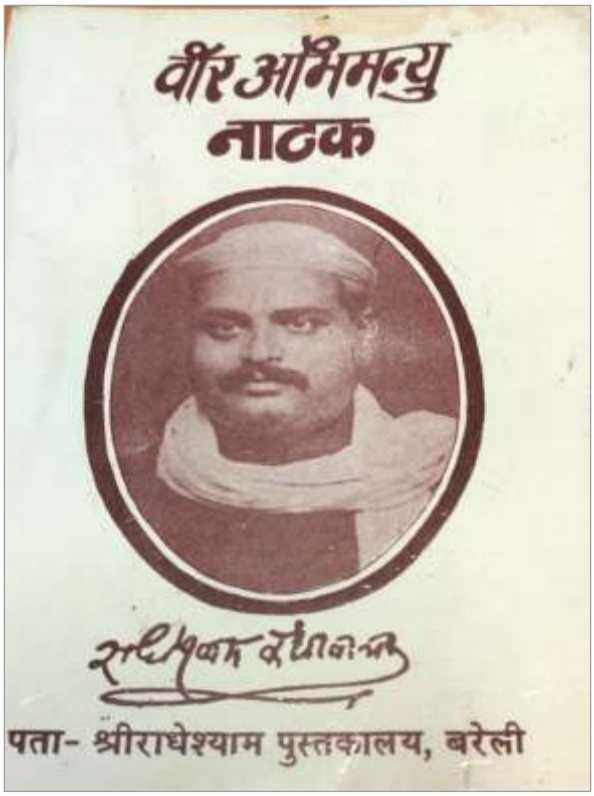

लेख 'नशे की झोंक में' शीर्षक से मतवाला द्वारा लिखे गए हैं। इसमें उस समय प्रकाशित हो रही पत्र-पत्रिकाओं की अच्छी खबर ली गई है। 'भ्रमर' के मार्च 1923 की एक बानगी देखिए—

'खण्डवे' के कर्मवीर तक जा नहीं सकते, क्योंकि वह दूसरे प्रदेश वालों से बात नहीं करता, मध्य प्रांत का लीडिंग पेपर है। आगरे के 'सैनिक' से खाने-पीने की बात करोगे तो वह गोली मार देगा। प्रयाग की 'सरस्वती' शास्त्रार्थ के लिए तैयार है 'रोटी खिलाने' के लिए नहीं। चाँद तो अपनी 'चाँद' खुद ही नंगी किये हुए है, वह किसे सिर चढ़ने देगा! 'मनोरमा' के यहाँ खिलाने-पिलाने का रिवाज नहीं है। 'गृहलक्ष्मी' फूहड़ है। अन्य रचनाएँ भी अपनी अनोखी शैली से रोमांचित करती हैं, जैसे—'कूटनीति का विश्वविद्यालय', इसमें एक काल्पनिक परीक्षा केंद्र शिकारपुर है, जिसके परीक्षक लॉर्ड मुखर्जी हैं। परीक्षा प्रश्न पत्र में पूछे गए कुछ रोचक सवालों में से एक पर नजर तो डालें, जो 'भ्रमर' के मार्च 1928 अंक में छपे हैं— प्रश्न : अंग्रेजों ने सृष्टि के आदि से लेकर अंत तक किसी युद्ध में अन्याय नहीं किया। मि. मॉडर्न के इतिहास से वाक्य उद्धृत करके इसको साबित करो। 'भ्रमर' में उच्च कोटि के लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता था। यहाँ 'भ्रमर' में प्रकाशित विज्ञापनों और उसकी विज्ञापन नीति की चर्चा करना भी महत्वपूर्ण होगा। 'भ्रमर' में विज्ञापन का अनुबंध कम-से-कम तीन माह का, दो माह की अग्रिम राशि के साथ होता था। पत्रिका की विज्ञापन दर थी—एक पेज या दो कॉलम 12 रुपया, कवर का चौथा पेज 24 रुपये प्रतिवार, रंगीन चित्र के सामने 20 रुपये प्रतिवार, आधा पेज एवं चौथाई कॉलम की दरें 7 रुपया एवं 4 रुपया प्रतिवार थी। छोटे विज्ञापनों की दर 1.50 पैसे प्रतिवार थी।

नवंबर 1922 में एक बटन का विज्ञापन देखिए—

काले पड़ते ही नहीं, मुद्दतों देते हैं काम।
मिस्ल चाँदी के दमदार हैं दो आने दाम॥

पत्र का मैटर काली स्याही में रहता और विज्ञापन नीली स्याही में मूर्च्छित होते। आयुर्वेद तेल, कोकशास्त्र, संग्रहणी का शर्तिया इलाज, न्यू अल्फ्रेड नाटक कंपनी द्वारा 'परम भक्त प्रहलाद' नाटक का विज्ञापन, निसंतान का इलाज, मैस्मरीज विद्या या बम्बई के डॉक्टर बाटलीवाले की प्रख्यात औषधियाँ, स्वाधीन साप्ताहिक समाचार पत्र—सब कुछ के विज्ञापन छपते थे। प्रारंभ में सादी छपाई थी, लेकिन 1925 से विज्ञापन रंगीन छपने लगे थे। राधेश्याम प्रेस से छपने वाली विभिन्न पुस्तकों के विज्ञापन भी प्रायः छपा करते।

भ्रमर के संपादक, प्रूफरीडर, मशीन मैन, कंपोजीटर, कटर-वेंडर, लेखकों की उत्कृष्ट टीम, राधेश्याम पोस्ट-ऑफिस सब कुछ अपना था। 'भ्रमर' में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों की भाषा-शैली और छपाई के लोग कायल थे। अतः 'भ्रमर' में कराची, रावलपिंडी, अमृतसर, अहमदाबाद, मुंबई, कलकत्ता, दिल्ली तथा विदेशी कंपनियों के भी विज्ञापन छपते थे। 1910 के प्रेस ऐक्ट के कारण जहाँ ज्यादातर हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ मुकदमे झेलती थीं और बंद हो जाती थीं, वहीं 'भ्रमर' को इस ऐक्ट के कारण कभी कोई मुश्किल नहीं हुई। ऐसा शायद इसलिए भी कि उसके कहने की कला कुछ अलग, परिष्कृत और मुहावरेदार होती थी। ऐसा नहीं कि 'भ्रमर' ने कभी ब्रिटिश शासन की नीतियों का विरोध नहीं किया, लेकिन विरोध के लिए जिन प्रतीकों, भाषा आदि का प्रयोग 'भ्रमर' ने किया, उसे ब्रिटिश शासन का सेंसरशिप कभी पकड़ नहीं सका। 'भ्रमर' के बंद होने की पृष्ठभूमि में भी 'अर्थघाटा' ही था, जो आज तक हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को कालग्रास बनाता रहा है। नवंबर 1927 में 'भ्रमर' के पाँच साल पूरे होने पर लिखे संपादकीय में यह आधार भूमि तैयार हो गई थी। आज 'भ्रमर' के प्रकाशन में जितना व्यय करना पड़ रहा है, उसके हिसाब से सालभर में दो हज़ार का घाटा बैठ जाता है। घाटा सहकर भी कोई पत्र नहीं चलाया जा सकता। राधेश्याम कथावाचक का निरंतर व्यस्त रहना भी पत्रिका के बंद होने का एक कारण बना। अपने नाटकों और कथावाचन के सिलसिले में वे निरंतर यात्राओं में रहते थे। प्रेस का सारा कार्य मैनेजर आदि ही देखते थे। यह भी घाटे का एक बड़ा कारण था।

'भ्रमर' की वर्ष 1922, 23, 27, 28 तथा 29वें वर्ष की फाइलें जयपुर निवासी हरिशंकर शर्मा के पास हैं, जिसके आधार पर उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है। 'भ्रमर' के वर्ष 1924, 25 और 1926 की फाइलें प्राप्त होने के बाद 'भ्रमर' का स्वरूप और भी स्पष्ट हो सकेगा, 'भ्रमर' की शताब्दी के बाद ऐसी आशा की जा सकती है।

कलाओं की अंतर्दृष्टि

समीक्षक : **डॉ. पूर्णिमा शुक्ला**

लेखक : **डॉ. राजेश कुमार व्यास**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 164

मूल्य : रु. 230/-

पुस्तक 'कलाओं की अंतर्दृष्टि' एक निबंध-संग्रह है, जिसमें भारतीय कलाओं के बोध से पाठकों का परिचय कराया गया है। लंबे समय से भारत विदेशी सत्ताओं का गुलाम रहा है, जिसके कारण यहाँ की कलाओं को उनकी वास्तविक पहचान नहीं मिल पाई। पश्चिम की दृष्टि भारत पर इतनी हावी रही है, जिसके कारण भारतीय इतिहासकार, कला दार्शनिक भी भारतीय कलाओं को विदेशी दृष्टिकोण से देखते रहे। यही भारतीय बौद्धिक दरिद्रता भी रही है। ब्रिटिश काल के समीक्षकों ने भारतीय कलाओं को रूढ़िवादी और अंधविश्वासी बताया है। इस यूरोपीय तिलिस्म को सर्वप्रथम आनंद वेंकटेश कुमारस्वामी ने भारतीय कलाओं और दर्शन का गहन अन्वेषण करके तोड़ा। आनंद कुमारस्वामी ने पश्चिमी शिक्षा प्रणाली को भारतीय कलाओं की अंतर्दृष्टि में सबसे बड़ा बाधक बताया है। उनका मानना है कि पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय समाज में भारतीय शिक्षा, कला और संस्कृति के प्रति उदासीनता का भाव पैदा किया है।

यह पुस्तक 23 अध्यायों में बँटी हुई है, जिसमें हर अध्याय का अपना एक विशेष महत्व है। प्रथम अध्याय में लेखक ने कलाओं में छिपे योग का विस्तृत वर्णन किया है। नाट्य, संगीत, नृत्य, शिल्प, चित्रकला आदि पहले इस रूप में नहीं थे। इन्हें परंपरा, शास्त्रों और नियमों से जोड़कर बाद में सुव्यवस्थित किया गया है। योग, चित्र कृतियों के निरोध पर आधारित होता है। यदि हम किसी भी भारतीय कला के मूल में जाएँगे तो पाएँगे कि कलाकार चित्रवृत्ति का निरोध करके अपनी कल की साधना में समर्पित होता है। 'कल' अपने वास्तविक रूप में योग और साधना ही है, जिसमें कलाकार ध्यान-चिंतन के जरिये नया सृजन करता है। इस अध्याय में लेखक ने योगेश्वर की प्रतिमा के आध्यात्मिक पहलू, बुद्ध की प्रतिमा, उपनिषदों, पुराणों, भरत मुनि के नाट्य शास्त्र, कालिदास के मेघदूत, भगवान शिव की नटराज की प्रतिमा इत्यादि के पीछे कलाओं के योग की अंतर्दृष्टि को व्याख्यायित किया है।

दूसरे अध्याय में लेखक ने कला और इतिहास को भारतीय दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित किया है। भारत का इतिहास मुख्यतः मुगलों और ब्रिटिशर्स के दरबारी इतिहासकारों द्वारा लिखा गया है। तत्पश्चात, ब्रिटिश विद्वानों द्वारा ही उनका अध्ययन एक औपनिवेशिक दृष्टि से किया गया, जिसके कारण भारत की कला एवं इतिहास अपने मूल उद्देश्यों को प्राप्त ही नहीं कर सका। फिर भी आनंद कुमारस्वामी ने भारत की कलाकृतियों और इतिहास को समझने के लिए अपना अमूल्य योगदान दिया। उन्होंने 13 भाषाओं का अध्ययन करके, पूरे भारत का भ्रमण किया और यहाँ के कला संग्रहालयों, कलाकृतियों एवं इतिहास को समझने में भारतीय अंतर्दृष्टि का प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त, महर्षि अरविंद, राय कृष्ण दास, डॉ. मोती चंद्र, श्री सी. शिवराम मूर्ति, प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल इत्यादि ने भारतीय कला का मौलिक दृष्टि से विचार किया।

तीसरे अध्याय में बताया गया है कि भारतीय कलाएँ भावमूलक हैं। इनका सौंदर्य कालातीत है, समय से परे है, इसलिए ये किसी देश-काल की सीमा से ऊपर होता है। कलाओं का सौंदर्य, संवेदना और ज्ञानेंद्रियों से जुड़ा होता है। चौथे अध्याय में कला के मूर्त और अमूर्त रूप के मध्य में भेद को स्पष्ट किया गया है। कलाकृतियाँ आकृतिमूलक भी होती हैं। उन्हें अतीत की कला कहना या उनका वर्तमान से कोई सरोकार न होना, कहना हमारी बौद्धिक दरिद्रता कहलाएगी। पंचम अध्याय में भरत मुनि के 'नाट्य शास्त्र', जिसे 'पंचम वेद' कहा गया है, के सार को वर्णित किया गया है। वास्तव में, यह नाट्य विधा से जुड़ा नहीं है, बल्कि गायन, वादन, नृत्य, अभिनय इत्यादि सभी कलाओं को अपने आप में समाहित किये हुए है।

शेष अध्यायों में कलाओं का वर्णन शील एवं अश्लील होना, कलाओं की जीवंतता एवं अनुशासन, कला में नैतिकता एवं उपयोगिता इत्यादि के आधार पर किया गया है। कलाओं को दर्शक एवं जनसामान्य की दृष्टि से देखने का वर्णन किया गया है। कलाओं की प्राचीन परंपरा से आधुनिक नवाचार तक की यात्रा का वर्णन, कलाओं के आपस में अंतर्संबंधों की विस्तृत व्याख्या की गई है। लेखक ने कलाओं के सांस्कृतिक पक्ष को भी उजागर किया है।

14वें अध्याय में लेखक ने महात्मा गांधी की कलादृष्टि से पाठकों का परिचय कराया है। गांधी जी कला को आत्मा की अभिव्यक्ति मानते थे। इस अध्याय में गांधी जी की कला से निकटता के बारे में बताया गया है। लेखक ने अंतिम अध्यायों में समकालीन कला दृश्य, कला सौंदर्य की सांकेतिक भाषा, रायगढ़ कथक घराना, कलाओं के आदिदेव शिव के हर अवतार से पाठकों का परिचय कराया है।

'कलाओं की अंतर्दृष्टि' एक मौलिक रचना है, जिसे शब्दों की परिधि में समीक्षा के रूप में बाँधा जाना संभव नहीं है। यह पुस्तक साहित्य, कला, संस्कृति आदि में रुचि रखने वाले पाठकों, शिक्षकों एवं शोधार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। पुस्तक की भाषा इतनी सहज और सरल है कि पाठक की तारतम्यता प्रारंभ से अंत तक बनी रहती है।

समीक्षक : **डॉ. पूर्णिमा शुक्ला**

लेखक : **विंग कमां. धीरेंद्र सिंह जफा,** *वीर चक्र*

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 294

मूल्य : रु. 375/-

जब भी देश पुकारेगा

आमतौर पर युद्ध संघर्ष पर बेहद कम पुस्तकें लिखी जाती हैं, खासतौर पर एक योद्धा जब युद्ध संघर्ष पर अपना अनुभव साझा करता है तो निश्चय ही वह कल्पना से परे रोंगटे खड़े कर देने वाला सत्य होता है, जिसका एक आम नागरिक तक पहुँचना बड़ा ही मुश्किल होता है। इस प्रकार की पुस्तक 'जब भी देश पुकारेगा' युवाओं के लिए प्रेरणा हेतु एक अहम् भूमिका अदा करती है। मातृभूमि एवं देश के सम्मान की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की परवाह न करते हुए एक दृढ़निश्चयी फाइटर स्क्वाड्रन ने किस प्रकार से 1971 में बाँग्लादेश के लिबरेशन युद्ध में अपना अमूल्य योगदान दिया, यह पुस्तक इसी संघर्ष का एक जीवंत दस्तावेज है।

यह पुस्तक पूर्ण रूप से व्यक्तिगत अनुभवों एवं अनुबोधों पर आधारित है। यह वृत्तांत भारत के विभाजन के बाद उपजी भौगोलिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों, जिनमें पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के मध्य सांस्कृतिक विभेद के कारण एक द्वेष व्याप्त हो गया और धीरे-धीरे दोनों के मध्य युद्ध की स्थितियाँ पैदा हो गईं, पर आधारित है। अंततः, भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को अपनी राजनीतिक दक्षता और दूरदर्शिता का प्रयोग करते हुए युद्ध में पूर्वी पाकिस्तान की सहायता करने हेतु आगे आना पड़ा। सन् 1971 के आरंभ में पाकिस्तान के साथ अवश्यंभावी युद्ध के समय स्क्वाड्रन फाइटर धीरेंद्र सिंह जफा ने अपनी कर्तव्यनिष्ठा एवं अदम्य साहस का परिचय दिया, जिसमें वे घायल होकर पाकिस्तानी सीमा में गिरे और बंदी बना लिये गए। पाकिस्तान के रावलपिंडी शहर में स्थित युद्धबंदी जेल में 12 भारतीय पायलट कैद थे। यह वृत्तांत दुश्मन जेल में कैद इन 12 भारतीय पायलटों के विषय में है, जिन्होंने यातनाएँ सहीं। घर-परिवार में लौटने की आशा में मुसीबतों के दिन काटे, मगर हमेशा से ऊर्जा बनाए रखते हुए अपने भारतीय होने के गौरव में युद्ध में सबने अपने साहस और पराक्रम का अद्भुत परिचय दिया।

पुस्तक 20 अध्यायों में बँटी हुई है। प्रथम अध्याय में वर्णन है कि किस प्रकार से पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच युद्ध आरंभ हुआ, जिसके कारण बंगाल से आए करोड़ों शरणार्थियों ने भारत में शरण ली और न चाहते हुए भी तत्कालीन प्रधानमंत्री को बाँग्लादेश की मदद करनी पड़ी। फलतः, गुस्साए पाकिस्तान ने 03 दिसंबर, 1971 को भारत पर चौतरफा हमला बोल दिया और युद्ध का आगाज हो गया। भारतीय वायुसेना के युद्धक विमानों—सुखोई-7 के एक बड़े बेड़े का नेतृत्व धीरेंद्र सिंह जफा कर रहे थे, जिन्होंने सात दुश्मन टैंकों पर हमला करके उन्हें ध्वस्त कर दिया। इस दौरान उनके विमान में आग लग गई और वे अपनी जान पर खेले। इसका वर्णन पुस्तक में है, जिसमें जफा ने बताया कि उन्हें मृत्यु का आभास हुआ, जो कष्टदायी नहीं था। दूसरे अध्याय में जफा को अहसास हुआ कि वो दुश्मन देश की जमीन पर गिरे हैं और इस अध्याय में उनके दुश्मन देश द्वारा बंदी बनाए जाने तथा युद्ध बंदियों के साथ व्यवहार का वर्णन है। तीसरे अध्याय में जफा से हुई पूछताछ तथा चौथे में उनके शरीर पर आई चोटें और अस्पताल में हुए इलाज का वर्णन है, जिसमें एक दयावान नर्स के प्रति जफा अपनी कृतज्ञता को भी प्रकट करते हैं।

पाँचवें अध्याय से 18वें अध्याय तक जेल के अंदर व्यतीत किया गया समय, साथी, वातावरण, मनोदशा, खान-पान, पाकिस्तानी अफसरों के व्यवहार इत्यादि का विस्तान से वर्णन किया गया है। 19वें अध्याय में मुस्लिम पाकिस्तानी बच्चे जेल में भारतीय कैदियों से मिलने आते हैं। उनके कौतूहल, उत्सुकता और भारतीय कैदियों द्वारा बच्चों पर लुटाया गया स्नेह और प्यार का खूबसूरत चित्रण इसमें किया गया है, जिसमें इस दृश्य को देखकर बच्चों की माताएँ दंग रह जाती हैं। 20वें अध्याय में सभी कैदियों का पाकिस्तान की जेल में एक वर्ष की कैद के पश्चात वतन वापसी के दिन की विस्तृत दिनचर्या, उत्साह, मनोभाव और गर्व का वर्णन है, जो कि पाठक को रोमांचित कर देने वाला पल है। एक लंबे इंतजार के बाद अपने बीवी-बच्चों, माँ और घर वालों तथा मातृभूमि से मिलने का पल।

जफा द्वारा लिखी गई यह पुस्तक बेहद रोमांचकारी और सजीव ढंग से युद्धबंदियों द्वारा पाकिस्तान की जेल में बिताये गए एक वर्ष की दास्ताँ है। कैद के दौरान परिवार, पत्नी एवं मित्रों से पत्रों के माध्यम से हुई बातचीत को पुस्तक के अंत में परोसकर पुस्तक को दिनचस्प और भावुक बना दिया गया है। पुस्तक पाठकों को एक फाइटर स्क्वाड्रन के साहस के साथ-साथ पाकिस्तान के पूरे राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रवैये का भी साक्षात्कार कराती है। यह पुस्तक पाठकों में प्रेरणा और साहस भरती है।

अंतिम ईश्वर

समीक्षक : **डॉ. राम प्रताप सिंह**

लेखिका : **प्रतिभा राय**

अनुवादक : **राजेन्द्र प्रसाद मिश्र**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 396

मूल्य : रु. 495/-

साहित्यकार समाज का सबसे बड़ा द्रष्टा होता है। वह जिस समाज में साँस लेता है, उस समाज की समस्याओं से परिचित होता है। वैज्ञानिक जिस प्रकार जीवन और जगत को जीने के लिए सहज और सुगम साधन उपलब्ध करता है, रचनाकार भी अपनी रचनाओं से मानव सभ्यता की समस्याओं को हल करने की पहल करता है। कालजयी रचनाएँ विराट चेतना की ही अभिव्यक्ति हैं। 'अंतिम ईश्वर' उपन्यास साहित्य जगत में एक ऐसा ही उपन्यास है। 'अंतिम ईश्वर' उपन्यास ओड़िया की प्रतिष्ठित लेखिका प्रतिभा राय द्वारा लिखा गया है, जिसका अनुवाद राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ने किया है। यह राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित है। प्रस्तुत उपन्यास का सत्रह पर्वों के रूप में विभाजन किया गया है। 21वीं सदी में जिस प्रकार धर्मांधता, धार्मिक कट्टरता, धर्मांतरण, अंधविश्वास, बाह्याडंबर का साम्राज्य फल-फूल रहा है, धर्म और अध्यात्म की दुनिया में अहिंसा और प्रेम के लिए स्थान नहीं है। धर्म भी व्यापार और राजनीति का केंद्रबिंदु हो गया है। धर्म की मूल चेतना हाशिये पर चली गई है। ऐसी परिस्थिति में धार्मिक कट्टरता जैसी सांप्रदायिक कैंसर रूपी बीमारी से समाज को बचाना साहित्यकार का दायित्व है।

'अंतिम ईश्वर' का नायक 'मासाक नोमाड' अपने माँ-बाप की अवैध संतान है। इसी कारण उसके माँ-बाप उसे छोड़ देते हैं, जिसका पालन-पोषण 'सांद्र मोलाक' नामक व्यक्ति करता है। सांद्र मोलाक मासाक को भरतानंद के आश्रम में भर्ती कराना चाहता था, जहाँ वैदिक रीति से आदिवासी बच्चों को वेद, उपनिषद, पुराण और शास्त्रादि पढ़ाने के साथ आधुनिक शिक्षा दी जाती है। इससे पहले, आदिवासी और पिछड़ों को संस्कृत पढ़ने का अधिकार नहीं था। ऐसा अनेक शास्त्रज्ञों द्वारा मत देने के कारण वे लोग संस्कृत पढ़ने से वंचित रह गए थे। भरतानंद स्वामी का यह क्रांतिकारी काम था, किंतु जब भरतानंद को यह बात पता चली कि मासाक माँ-बाप की अवैध संतान हैं तो भरतानंद उसे अपने आश्रम में प्रवेश लेने से मना कर देते हैं तथा सांद्र से कहते हैं कि यह बालक हमारे समाज के लिए अशुभ है। भरतानंद कहते हैं कि मासाक की धमनियों में किसी हिंदू का रक्त प्रवाहित नहीं हो रहा है। इस बालक को अतिशीघ्र फादर फ्रेक के हैप्पी होम अनाथाश्रम में छोड़ आओ। सांद्र सोच रहा था कि इन विशाल देहधारी बाबाओं का हृदय विशाल नहीं है। लकड़ी और पत्थर से बने गुड़िया खिलौने लाकर उस पर सिंदूर पोतकर कहते हैं, ये जीवंत देवता हैं, इनकी पूजा करो। भोग लगाओ और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दो और दान-दक्षिणा के बदले वे आदिवासियों को जीभर कर आशीर्वाद देते हैं।

'अंतिम ईश्वर' में वर्तमान समाज के समकालीन सवालों को बड़ी शिद्दत के साथ उठाया गया है। धर्म के नाम पर जिस तरह ठगी कर संत महात्माओं का धंधा फल-फूल रहा है। वे मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा कर जनता की गाढ़ी कमाई से सभी सुख-सुविधाओं का भोग करते हुए जीवन जी रहे हैं, उनका ईश्वर तो मूर्तियों में विराजमान है, जिसके लिए वे मानव जाति का नरसंहार तक कर सकते हैं। राजनीति ने धर्म को सत्ता प्राप्त करने का हथियार बना दिया है। धर्म, जिसका उद्देश्य मानव कल्याण था। जीवन में मर्यादित जीवन जीना जिसका अभीष्ट था, वह धर्म आज लँगड़ा हो गया है। इसके कारण आज मानवता कराह रही है। क्या यह पृथ्वी मनुष्य के लिए नहीं है, सिर्फ मंदिर, मस्जिद, गिरिजा और उसमें विराजमान कल्पित, निष्प्राण ईश्वरों के लिए है? मासाक कहता है कि मनुष्य जानवर से अधिक हिंसक है, क्योंकि पशु तो भूख लगने पर हिंसा करता है, किंतु मनुष्य सबसे उन्नत मस्तिष्क रखकर भी धर्म, जाति, भाषा, राष्ट्र के नाम पर हिंसा करता है। मनुष्य द्वारा मनुष्य की हत्या, सभ्यता ध्वंस करना, मंदिर, मस्जिद, गिरिजा आदि उपासना पीठों में प्रार्थनारत निरीह ईश्वर विश्वासी मनुष्य पर बम बरसाना, स्कूल, अस्पताल, मनोरंजन केंद्र इत्यादि पर बम बरसाकर मासूम लोगों को मार डालना क्या ईश्वर का आदेश है और उससे यदि मनुष्य को वैकुंठ की प्राप्ति होती है, जैसा कि आज का मनुष्य विश्वास करता है तो समझ लो कि सभ्यता का विनाश काल आ गया है। प्रस्तुत उपन्यास धर्म और ईश्वर रूपी विश्वास पर सवाल उठाता है और विभिन्न धर्मों के शास्त्रों की पुनर्व्याख्या की वकालत करता है।

इस उपन्यास को पढ़ते समय हम ईश्वर और धर्म रूपी विश्वास की एक तार्किक पड़ताल भी करते हैं। गोरख और कबीर की तरह ईश्वर को मंदिर-मस्जिद की चारदीवारी से बाहर पाते हैं। शास्त्र मनुष्य से बड़ा नहीं हो सकता। प्रस्तुत उपन्यास में ईश्वर और धर्म को लेकर जो बहस है, उसमें लेखिका ने यह स्पष्ट संदेश दिया है कि शास्त्र तो मनुष्य के कल्याण के लिए लिखे गए हैं। मासाक अंतिम ईश्वर की तलाश में पूरे विश्व में मैत्री, शांति और प्रेम का राज्य स्थापित करना चाहता है।

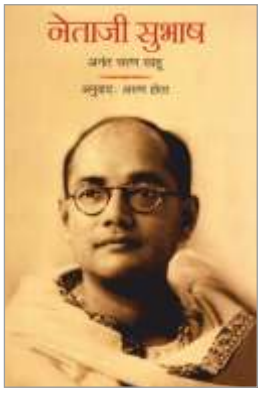

समीक्षक : **सूर्य कांत शर्मा**

लेखक : **प्रो. अनंत चरण साहू**

अनुवाद : **श्री अरुण होता**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 142

मूल्य : रु. 225/-

नेताजी सुभाष

» आजादी का अमृत महोत्सव और उसके बाद का वर्तमान कालखंड, अब के आत्मनिर्भर होते भारत के लिए विशेष कर बालकों, किशोरों और युवाओं हेतु विशेष है। इसी को ध्यान में रखकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने इस ओर विशेष प्रयास किए और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप अपने प्रकाशनों को ढाला है। इसका स्पष्ट और स्वच्छ प्रमाण यह प्रस्तुत समीक्षित पुस्तक है।

मूलतः ओड़िया भाषा में लिखी गई यह पुस्तक राजभाषा हिंदी में बड़ी सूक्ष्मता से अनूदित और संपादित की गई है। नेताजी सुभाष चंद्र बोस के समूचे जीवन के छुए-अनछुए पहलुओं के साथ-साथ यह पुस्तक उनके जीवन की छोटी-से-छोटी घटना तथा आजादी के पुरोधा के दुर्घर्ष संग्राम का लेखा-जोखा बड़ी ही संजीदगी, परंतु निकट से करती है।

लेखक ने कुल 28 अध्यायों में नेताजी के समूचे व्यक्तित्व और उनके अथक प्रयासों तथा विचारों को बेहद संवेदनशीलता और रोचकता से लिखा है। बहुधा यह देखा जाता है कि किसी भी राष्ट्रीय नायक का चित्रण करते हुए ऐतिहासिक तथा तथ्यात्मक तार्किकता कहीं-न-कहीं धुँधला जाती है और विचित्र से तथ्य और जीवन की कहानी प्रस्तुत की जाती है, परंतु इस पुस्तक में ऐसी किसी भी अति यथार्थवादी या अति नाटकीयतापूर्ण तथ्य या घटना को शामिल नहीं किया गया है, वरन् पाठक को सहज-सरल, सारगर्भित, परंतु सरस अंदाज में नेताजी सुभाष चंद्र बोस को समग्र रूप से परिचित करवाया है। प्रत्येक अध्याय कम-से-कम तीन पृष्ठ और अधिक-से-अधिक सात या आठ पृष्ठों में रखा गया है। आज के डिजिटल होते वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, आज का युवा सीधे-सीधे संक्षेप में, परंतु सारगर्भित अंदाज में व्यक्तियों को, घटनाओं को इतिहास व अन्य ज्ञान को आत्मसात करना चाहता है।

पुस्तक के पहले तीन अध्याय, यथा प्राक् मुक्ति संग्राम के दौर की पृष्ठभूमि, सुभाष चंद्र बोस का वंशानुचरित यानी फैमिली ट्री, सुभाष की किशोर अवस्था और प्रारंभिक शिक्षा के प्रत्येक पहलू और जानकारी को सार्थकता को ध्यान में रखकर बताया गया है, जैसे उनके प्रारंभिक शिक्षा के वर्षों में उनके प्रिय अध्यापक श्री वेणीमाधव दास जी, श्री नारायण प्रसाद मोहंती जी रहे। उनके पसंदीदा लेखकों और कवियों की फेहरिस्त में विलियम वड्र्सवर्थ, महाकवि कालिदास, देशप्रेमी दार्शनिक अरविंद घोष इत्यादि थे। 'प्रेसीडेंसी कॉलेज से निष्कासित' अध्याय युवा सुभाष बाबू के मस्तिष्क और अंतर्मन की थाह लेता है। वह अन्याय के स्पष्ट और निडर विरोधी थे, प्रकृतिप्रेमी थे और समाज सेवा एवं मानव सेवा में सदैव तत्पर रहा करते थे। स्कूली जीवन से ही दृष्टि कमजोर होने के कारण चश्मा पहनते थे और सामरिक नियुक्ति में इसी कारण अयोग्य सिद्ध होते थे। इस पर भी सामरिक शिक्षा के प्रति ललक होने के कारण विश्वविद्यालय छात्र सामाजिक वाहिनी और भारतीय आंचलिक वाहिनी जैसे अर्धसामरिक शिक्षा संगठन से वे जुड़े रहे। इन सभी अनुभवों को सुभाष ने अपनी आत्मकथा वाली पुस्तक में प्रभावी रूप से वर्णित किया है।

हम सभी जानते हैं कि सुभाष चंद्र बोस जी ने इंग्लैंड में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त की और आईसीएस की परीक्षा पास की। चौथे स्थान पर उनका चयन हुआ, जिसे बाद में उन्होंने देश सेवा हेतु त्याग दिया, परंतु पुस्तक का सातवाँ और आठवाँ अध्याय उन सभी छोटी-छोटी घटनाओं और मुश्किलों का ब्यौरा देता है कि किस प्रकार से उन्होंने बहुत ही कम समय में और अधिक उम्र के कारण केवल इकलौते अंतिम अवसर में इसे पास किया।

पुस्तक का 11वाँ और 12वाँ अध्याय कोलकाता में राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में सुभाष की भूमिका तथा गांधी-इरविन समझौता और सुभाष की रिहाई पाठकों को युवा सुभाष की गहन अंतर्दृष्टि विचारों की सुस्पष्टता का परिचय देता है। तत्पश्चात, एक छोटा, परंतु सारगर्भित अध्याय उनकी यूरोप यात्रा और अंग्रेजी सरकार द्वारा कठोर कारावास, नजरबंदी और खराब स्वास्थ्य का द्रवित करने वाला वर्णन है। इसी अध्याय में उनका इटली के शक्तिशाली तानाशाह मुसोलिनी के साथ हुई मुलाकात का जिक्र भी है। वर्ष 1935 और 1936 में सुभाष ने यूरोपीय देशों, यथा ऑस्ट्रिया, हंगरी, पोलैंड, स्विट्जरलैंड, इटली, जर्मनी, रूस और फ्रांस का भ्रमण किया, ताकि इन देशों में भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति संवेदनशीलता और सहयोग की भावना उत्पन्न की जा सके। इसी दौरान उन्होंने अपनी आत्मकथा का दूसरा भाग 'भारतीय मुक्ति संग्राम' लिखा और यह पुस्तक सन् 1936 में लंदन में प्रकाशित हुई, परंतु अंग्रेजी शासकों ने इसे भारत में बैन कर दिया था। अगले तीन अध्यायों में राष्ट्रीय कांग्रेस और सुभाष बाबू के अंतरंग रिश्तों और उसमें मिली चुनौतियों, कठिनाइयों व उपलब्धियों के साथ-साथ उनके अविस्मरणीय योगदान, जो कि दस्तावेजीकरण की दृष्टि से अहम हैं और

साथ-ही-साथ अध्यक्ष पद से इस्तीफा तथा उसके कारणों का तार्किक और सिलसिलेवार ब्योरा दिया गया है।

अध्याय 'जर्मनी में भारतीय लिजियन का गठन', 'दक्षिण-पूर्व एशिया की ओर सुभाष' और 'दक्षिण-पूर्व एशिया में सुभाष के सामरिक कृतित्व' उनके कठोर परिश्रम को उकेरने में सक्षम हैं। आजाद हिंद फौज का गठन, अमर स्वतंत्रता सेनानी रास बिहारी बोस, सरदार मोहन सिंह का सारगर्भित वर्णन आखिरी अध्यायों में दिया गया है। पुस्तक का अध्याय 'अंतिम यात्रा पर नेताजी' आँखों को नम कर देता है। टोक्यो की तलहटी में स्थित रैंकोजी बौद्ध मंदिर में नेताजी की चिता भस्म वाले पात्र को आज भी सुरक्षित रखा गया है और यह आज तक विवादित भी है, क्योंकि नेताजी की मृत्यु हुई कि नहीं, इस पर तीन-तीन जाँच समितियाँ बनीं और उनकी रिपोर्ट को जनमानस ने नहीं माना है।

पुस्तक का अंतिम अध्याय नेताजी सुभाष की राजनीतिक विचारधारा और दर्शन विशेष पठनीय है और उसमें पाठक को वर्तमान सरकार की नीतियों और जनोन्मुखी योजनाओं का ब्ल्यू प्रिंट प्रारूप में देखा, पढ़ा और समझा जा सकता है।

कुल मिलाकर, क्षेत्रीय भाषा से अनूदित पुस्तक नेताजी सुभाषचंद्र बोस के व्यक्तित्व और कृतित्व को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करती है।

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखिका : **वर्षा दास**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

पृष्ठ : 120

मूल्य : रु. 300/-

खिड़की खोल दो

» इस पुस्तक में वर्षा दास के चार लघु नाटक संकलित हैं। उनकी रचनात्मकता बहुआयामी है। उन्होंने विभिन्न विधाओं और भाषाओं में लेखन किया है। उनके नाटकों की कथावस्तु में भी विविधता है। सामान्यतः आदर्शवादी दृष्टिकोण से लिखे गए इन नाटकों का कथानक समकालीन यथार्थ पर आधारित है।

'नहीं, कभी नहीं' इस संकलन का पहला नाटक है। इसमें अभिशप्त दांपत्य से मुक्ति के लिए नायिका नेहा ने अपने पति से तलाक ले लिया है। अब वह एक शांत, संतुष्ट और संतुलित जीवन जी रही है। इसके बाद, संयोगवश, उसके जीवन में कुछ ऐसे पुरुष आते हैं, जो उससे प्रेम तो करते हैं, किंतु दुचित्ते और ढुलमुल हैं। नेहा उन्हें स्वीकार नहीं करती।

'एक सपना' सबसे बड़े कलेवर वाला नाटक है। इसकी नायिका सोनल झुग्गी बस्तियों की स्याह जिंदगी को रोशन करने का प्रयास कर रही है। झुग्गीवासियों की जीवन-स्थिति के बारे में एक संवाद है—'वह जिस बस्ती में रहती है, वहाँ कोई पशु भी मुश्किल से ही रह पाएगा।' सोनल के प्रयासों के सकारात्मक परिणाम होते हैं। उसके कुछ मित्र और परिजन भी इस काम के लिए प्रेरित होते हैं। एक व्यक्ति का सपना फलित होकर अनेक लोगों का सपना बन जाता है। अनावश्यक विस्तार के कारण इस नाटक में द्वंद्व सृजित नहीं हो पाया है। कसावट में कमी से इसकी कहानी भटकती है।

'मैं कौन हूँ' नाटक में रामू और पिंटू मजबूरन चोर हैं, लेकिन दिल से जज़्बाती और नेक हैं। उनकी जिंदगी में तेज घटनाक्रम वाली एक ऐसी रात आती है, जो उन्हें बिलकुल बदल देती है। उस रात वे तरह-तरह के शोषण, अत्याचार और अनाचार देखते हैं। हैरान-परेशान-से वे सोचते हैं कि यह दुनिया ऐसी क्यों है और वे खुद आखिर क्या हैं? अपने अंदर आए बदलाव से भी वे हैरान हैं। पिंटू कहता है, "आज लगता है कि अपन के ऊपर से कोई फरिश्ते का हाथ घूम गया है। अपन अब वो नहीं रहा। पता नहीं, अपन कौन है?" नाटक को पढ़कर 'जागते रहो' और 'अनोखी रात' फिल्में याद आती हैं।

पुस्तक के आखिरी नाटक, 'खिड़की खोल दो' की विषयवस्तु भी पहले नाटक की तरह, स्त्री-स्वातंत्र्य है। यहाँ मुक्तिकामी स्त्री का संघर्ष अपने ही परिवार से है। इसमें स्त्री-विरोधी पुरुष मानसिकता और दो पीढ़ियों की सोच में अंतर को दिखाया गया है। किशोरवया नायिका ममता कहती है—"सदियों से कुंभकर्ण की तरह सोते हुए समाज को झकझोरने की जरूरत है।" इस नाटक के भीतर भी एक नाटक है, जिसे देखकर ममता के रूढ़िवादी मानसिकता वाले पिता की आँखें खुल जाती हैं और ममता के लिए तो मानो सारी दुनिया ही खुल जाती है।

पुस्तक में संकलित नाटकों के संवाद जीवंत हैं। प्रथमदृष्टया ये साहित्यिक नाटक हैं, किंतु लेखिका ने नाट्यकला के मंचीय तत्वों को ध्यान में रखा है। इसके पात्र हमारी ही दुनिया के लगते हैं, लेकिन कहीं-कहीं उनकी प्रतिक्रिया अतिरेक भरी है। आरोपित आदर्श के कारण ये नाटक अंतिम प्रभाव में औसत बन पड़े हैं।

संग्रह के सभी नाटक व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों पर केंद्रित हैं। महान रंगकर्मी शंभुमित्र ने कहा है—"नाट्यकला की मूल बात है, संपर्क। समाज के साथ व्यक्ति का क्या संपर्क है और स्वयं अपने साथ उसका क्या संपर्क है—यही नाट्य द्वारा प्रकट होता है।"

ज़िंदा मैं

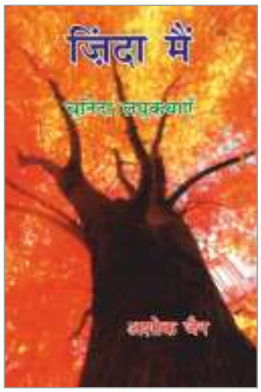

समीक्षक : **डॉ. उमेशचंद्र सिरसवारी**

लेखक : **अशोक जैन**

प्रकाशक : अमोघ प्रकाशन, गुरुग्राम, हरियाणा

पृष्ठ : 72

मूल्य : रु. 80/-

'ज़िंदा मैं' अशोक जैन की लघुकथाओं का संग्रह है। इस पुस्तक में कुल 41 लघुकथाएँ हैं। ये हैं—'डर', 'मुक्ति-मार्ग', 'गिरगिट', 'बुखार', 'बँटवारा', 'अपने-अपने स्वार्थ', 'मजे', 'पोस्टर', 'बूढ़ा बरगद', 'ज़िंदा मैं', 'टूटने के बाद', 'आर-पार', 'उसने कहा', 'क्वार्टर और हवेली के बीच', 'खाली पेट', 'अपराध-बोध', 'निर्णय', 'खुसर-फुसर', 'पैंतरे', 'फिर भी', 'झुग्गियों की आग', 'जेबकतरा', 'दाना-पानी', 'अकेलापन', 'मौकापरस्त', 'प्राइवेसी', 'लौटते हुए', 'फैसला', 'सुनहरी चेन वाली घड़ी', 'संकल्प', 'माहौल', 'सन्नाटे और मुस्कान के बीच', 'मुआवज़ा', 'बोध', 'चेतना', 'मिसाल', 'हार का बोध', 'गुहार', 'अपने-अपने दुख', 'समाधान' और 'आत्म-निर्णय'। ये लघुकथाएँ एक से बढ़कर एक हैं। प्रत्येक लघुकथा में एक संदेश छिपा है।

लघुकथा का अभ्युदय भले ही आधुनिक काल से माना जा रहा हो, परंतु लघुकथा भारत की माटी में सदियों से कुसुमित हैं, जिसका विस्तार आधुनिक युग में देखा जा रहा है। वर्तमान में, अनेक पत्रिकाएँ लघुकथा के प्रकाशन में अहम भूमिका निभा रही हैं। अनेक लघुकथा संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं, जो लघुकथा की लोकप्रियता के परिचायक हैं। वर्तमान में, लघुकथा विश्व में सफलता के साथ मान्यता प्राप्त कर चुकी है। लघुकथा को अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का श्रेय साहित्यकारों, संपादकों को जाता है, जिन्होंने खुद संघर्षरत रहकर साहित्य की इस विधा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित एवं प्रतिष्ठित किया है। गौरव का विषय यह है कि आज लघुकथा लेखन के क्षेत्र में पुरस्कार-सम्मान तक स्थापित हो चुके हैं, परंतु यह समय खुशियाँ मनाने का ही नहीं है, लघुकथा के विकास और संभावनाएँ तलाशने का भी है।

पिछली सदी के सातवें-आठवें दशक की लघुकथाएँ मुख्यतः बेरोजगारी, चौतरफा गरीबी, राजनीतिक दोमुँहेपन, सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और संबंधों में आते बिखराव की चिंताओं से लैस थीं। क्या आज ये सब मुद्दे खत्म हो गए हैं? नहीं। तो आज की लघुकथा में ये क्यों नहीं हैं? और, हैं तो क्यों हैं? बावजूद इसके, आज भी हमारा समाज इन पुरातन चिंताओं से मुक्त नहीं हो पाया है। मैं अपने आपको इन्हीं समस्याओं पर लघुकथा के चकराते रहने से पूरी तरह सहमत नहीं पाता हूँ। आज की लघुकथा अगर इन मुद्दों से आगे की, कुछ नवीन चिंताओं के आ जुड़ने, घनीभूत हो उठने और यदा-कदा पुरानी चिंताओं के भी परिवर्तित व परिवर्धित रूप में आ जाने की पैरवी कर रही हैं, तो इसका स्वागत किया जाना चाहिए।

समकालीन लघुकथा ने पात्रों के मानवेतर होने से मुक्ति पाकर मनुष्य को उसकी समग्रता में अपनाना और चित्रित करना शुरू किया। उसने मनुष्य से मनुष्य की बात सीधे मनुष्य के माध्यम से कहने के समकालीन कहानी के तेवर से खुद को जोड़ना शुरू किया। इसका यह मतलब बिलकुल नहीं है कि समकालीन लघुकथा ने मानवेतर पात्रों को पूरी तरह खारिज कर दिया है। हाँ, इसका यह मतलब अवश्य है कि पूर्वकालीन लघुकथा में जो पात्र प्रमुखतः प्रयुक्त होते आए थे, वे अब गौण हो गए हैं तथा मनुष्य और उसका मानसिक धरातल ही अब प्रमुख पात्र बन गए हैं।

पाठकों के बदलते रुख को देखकर कहा जा सकता है कि वर्तमान समय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से चिंतनीय तो है, परंतु साहित्यकारों की एकता, संघर्ष और त्याग साहित्य तथा संस्कृति को कुसुमित किये हुए है। भविष्य में भी यही संघर्ष लघुकथा ही नहीं, हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं के विकास में मील के पत्थर साबित होंगे। वह दिन दूर नहीं, जब दर्शक पाठक बनने को आतुर होंगे और उनके हाथों में पुस्तकें होंगी। साहित्य के विकास की दृष्टि से वह स्वर्णिम काल होगा। ऐसे समय का इंतजार हर लेखक को बेसब्री से रहेगा। लघुकथा के विकास के लिए इस बात की जरूरत है कि वर्तमान समय के रचनाकारों का संघर्ष तो जगजाहिर है, साहित्य के प्रति समर्पण भाव भी खूब है, बस जरूरत है प्रयासरत रहने की और नवोदित रचनाकारों को सहयोग प्रदान करने की। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह प्रयास उज्ज्वल भविष्य का द्योतक होगा।

मन का शोर

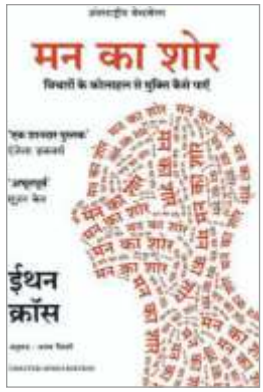

समीक्षक : **बीरेंद्र कुमार चौधरी**

लेखक : **ईथन क्रॉस**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल

पृष्ठ : 203

मूल्य : रु. 299/-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अगर ऐसा नहीं होता तो हम आज आदिमानव के दौर से उठकर आधुनिक मानव तक का सफर तय नहीं कर पाते। अपनी सुरक्षा की जरूरतों के लिए मनुष्य तो क्या, जानवर भी अपना झुंड बनाकर रहते हैं। फिर मानव तो विवेकशील, चिंतनशील और बुद्धिजीवी प्राणी ठहरा, तो भला वह अपने आपको अकेला कैसे रख सकता है! आदिकाल में ही उसे अपने समाज की जरूरत हुई और उसने अपने कुनबे, अपने समाज का निर्माण किया। आज का मानव तो पूर्णतः सामाजिक बन चुका है और उसे इस समाज से बाँधे रखने का काम

उसका मन करता है। वही मन, जो सदा चंचल रहता है। हम सोते हैं, जागते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, हँसते हैं, रोते हैं और न जाने कब कौन-सा कार्य-व्यापार करने लगते हैं और जब थक जाते हैं तो फिर बैठकर या लेटकर आराम करने लगते हैं। पर हमारा मन! वह तो निरंतर कार्य करता है, वह सदा जागता रहता है, चिंतनशील बना रहता है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह सपने नहीं देखता। उसका दिमाग सतत क्रियाशील बना रहता है। उसमें विचार-प्रक्रिया चलती रहती है, जिसे हम 'चिंतन' कहते हैं। निश्चय ही इसी चिंतनशीलता का ही परिणाम है कि वह अपने-आप से बातें करता है, योजनाएँ बनाते रहता है, उसे कैसे अमलीजामा पहनाया जाए, इस पर विचार करता है। कई बार यह विचारों का प्रवाह उसे अपने मन के अंदर उठने वाला शोर प्रतीत होता है। मन का यह शोर उसके लिए नकारात्मक भी हो सकता है और सकारात्मक भी। यह तो उस व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है कि वह अपने मन के इस शोर को किस तरह से लेता है और उसे किस रूप में ढालता है; नकारात्मक या सकारात्मक? ईथन क्रॉस द्वारा लिखित और अजय तिवारी द्वारा अनूदित पुस्तक 'मन का शोर' इन्हीं बिंदुओं पर विस्तार से विचार करता है।

पुस्तक के आरंभ में ही लेखक अपने पारिवारिक पृष्ठभूमि में आत्मचिंतन के महत्व को स्पष्ट करते हैं। वे इस बारे में लिखते हैं—'मेरे पिता ने मुझे बहुत ही छोटी उम्र में आत्मचिंतन के महत्व के बारे में सिखाया था। मैंने देखा कि जब दूसरे अधिकांश तीन वर्षीय बच्चों के माता-पिता उन्हें नियमित रूप से ब्रश करने और दूसरों के साथ विनम्रता का व्यवहार करने के बारे में सिखा रहे थे, तब मेरे पिता की प्राथमिकताएँ कुछ अलग थीं। अपनी गैर-परंपरागत शैली में, वे किसी भी दूसरी चीज से अधिक मेरे आंतरिक विकल्प को लेकर चिंतित थे। यदि मुझे कोई समस्या होती थी तो वे हमेशा मुझे अपने आत्मदर्शन के लिए प्रोत्साहित करते थे। वे मुझसे कहते थे, 'खुद से सवाल करो।' हालाँकि जिस सटीक प्रश्न का वे जिक्र कर रहे थे, वह मुझे नहीं मिला, लेकिन कई बार मैंने यह समझा कि वे मुझे किस बात के लिए प्रेरित कर रहे थे—'उत्तर के लिए खुद के भीतर झाँको।' जिस रचनाकार को ऐसा पारिवारिक परिवेश मिला हो, उसकी रचना किस हद तक परिष्कृत होगी, स्वतः संज्ञेय है। खासकर ईथन क्रॉस जैसे मनोवैज्ञानिक के बारे में तो इसमें कोई शक नहीं कि मानव-मन विचारों का एक महासमुद्र है, जिसमें अनगिनत विचार प्रतिक्षण, प्रतिपल समुद्र में उठने वाले ज्वार-भाटे की तरह दोलायमान होते रहते हैं। वे अपनी आत्ममुग्धता और अपने परिवेश में चल रही घटनाओं के बीच तालमेल बिठाने की कोशिश में खुद से प्रतिपल लड़ता रहता है। कई बार आप अपने आस-पास किसी-न-किसी को खुद से बातें करते सहज ही पा लेंगे। कहीं कोई नहीं, फिर भी वह बकबक कर रहा है। यह बात आपकी समझ में जब नहीं आती तो आप उसे नजरअंदाज कर आगे बढ़ना बेहतर समझते हैं; सिवा इसके कि उसकी मनोगत भावना को समझें और वह व्यक्ति जिस अवसाद के दौर से गुजर रहा है, उससे निकलने में उसकी मदद करें। मगर इसके लिए उस ज्ञान की गहराई की आवश्यकता है, जो उसे उस अवसाद के दौर से उबार सके; और उस ज्ञान की हममें, आपमें, हमारे जैसे असंख्य लोगों में कमी है और अपनी उसी कमी को छिपाने के लिए हम अवसाद से ग्रसित उस व्यक्ति को पागल तक करार दे आगे बढ़ जाते हैं, बजाय इसके कि हम अपनी क्षमता के अनुरूप उसे उस अवसाद के दौर से निकलने में मदद करें। यह अवसाद हम-आप जैसे सामान्य व्यक्ति तक सीमित नहीं है, इसके दौर से एक से बढ़कर एक इतिहास पुरुष गुजरे हैं। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन और यहूदियों के प्रसिद्ध बादशाह सुलेमान जैसे सैकड़ों दिग्गज इसके उदाहरण हैं। वहीं न्यायप्रिय कहे जाने वाले यहूदियों के राजा सुलेमान, जिन्होंने एक बच्चे को लेकर दो औरतों के बीच के झगड़े का बड़ी ही चतुराई से निर्णय किया था, लेकिन व्यक्तिगत जीवन में वह बेहद असफल साबित हुए। उनका जीवन अपने आप में विरोधाभास का समुंदर था।

लघुकथा के विविध आयाम

समीक्षक : **अंजू खरबन्दा**

लेखक : **रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'**

प्रकाशक : प्रवासी प्रेस पब्लिशिंग प्रा.लि. भारत, राजेंद्र नगर, गाजियाबाद

पृष्ठ : 166

मूल्य : रु. 310/-

'सहज पके सो मीठा होय' जब तक कथ्य सहज रूप से परिपक्व नहीं होगा और शिल्प का अधिकतम परिमार्जन नहीं हुआ होगा, लघुकथा पाठक के हृदय पर विराजेगी कैसे? भेड़ियाधसान प्रवृत्ति से बचने की सलाह देते हुए लेखक रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' ने अपनी बात स्पष्ट रूप से पाठकों के सामने रखी। विराम चिह्न और वर्तनी की अशुद्धि पर उन्होंने कड़ाई से बताया ही नहीं; बल्कि चेताया भी।

लघुकथा के विभिन्न आयामों पर लेखक ने जीवन की सार्थकता के दो अनिवार्य सहयोगी घटकों पर बात की है—1.प्रकृति और 2.मानव। अनायास ही अंसार कंबरी की ये पंक्तियाँ आँखों के आगे तिर आईं—

"धूप का जंगल नंगे पाँव एक बंजारा करता क्या
रेत के दरिया, रेत के झरने प्यास का मारा करता क्या!"

विकास के नाम पर धरती माँ को हम कितना नुकसान पहुँचा रहे हैं, पर यह नुकसान क्या केवल धरती माँ का है, हमारा नहीं? लेखक ने धरती, वायु, समुद्र, नदी सभी के प्रति चिंता का भाव रखते हुए

स्पष्ट संकेत दिया 'भूमिगत जल के निरंतर घटने और बढ़ते प्रदूषण का कारण एक व्यक्ति नहीं, बल्कि पूरा समाज है।'

सुकेश साहनी जी की लघुकथा 'उतार' में गिरते हुए जलस्तर की बात की गई। यह लघुकथा डायरी शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। अमृततुल्य जल को भी जातियों और अमीर-गरीब में बाँट दिया गया है और अफसोस इस बात का है कि जल के साथ मन भी बँट गए हैं; उतार पर केवल जलस्तर ही नहीं, अपितु हृदय की संवेदनाएँ भी हैं।

लेखक ने सुकेश साहनी की दूसरी लघुकथा 'विरासत' के बारे में लिखा है कि 2060 की जो परिकल्पना इस लघुकथा में की गई है, वह लोमहर्षक है। दो बूँद जल को तरसते लोग मिलीलीटर में पानी की अहमियत समझेंगे और बूँद-बूँद को तरसेंगे।

हरभगवान चावला की लघुकथा 'खून और पानी' का हवाला देते हुए लेखक ने इस विषय पर गहन चिंता जताई है। अरुण अभिषेक की लघुकथा 'आत्मघात' पर बात करते हुए लेखक ने इसे विडंबना बताया कि जिसकी छाँव में बैठकर सुस्ताते हैं, उसी से ऊर्जा लेकर उसी पर टूट पड़ते हैं। कम शब्दों में रची गई यह लघुकथा चेताती है कि जिस तरह से हम पेड़ों की अंधाधुंध कटाई कर रहे हैं, बिना यह सोचे कि हम आत्मघाती बन अपना ही नुकसान कर रहे हैं; अब न सँभले, तो फिर कभी नहीं सँभलेंगे।

आनंद हर्षुल की लघुकथा 'बच्चों की आँखें' का हवाला देते हुए लेखक ने आज के बच्चों का मोबाइल फोन के प्रति मोह पर करारा तंज कसा है। बगीचे में बैठे बच्चे मोबाइल में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें पेड़-पौधे, तितलियाँ, चिड़िया कुछ दिखाई नहीं दे रहा! फूल दुखी हैं कि उनके लिए नहीं हैं बच्चों की आँखें! संसाधन हमारी जरूरत की आपूर्ति करने के बजाय बच्चों का बचपन ही डकार जाए, तो ऐसे संसाधन हमारे किस काम के?

कमल कपूर की लघुकथा 'सपनों के गुलमोहर' उनके वृक्षों के प्रति प्रेम को दर्शाती लघुकथा है। इसमें लेखिका ने अपने गुलमोहर प्रेम को लघुकथा के माध्यम से जीवंत किया है। यहाँ लेखक ने बहुत सुंदर बात कही, 'प्रकृति का संरक्षण तभी संभव है, जब मानव इसे जीवन का अनिवार्य और अपरिहार्य अंग मानकर अनुपालन करे।'

डॉ. कविता भट्ट की लघुकथा 'कुलच्छन' के बारे में लेखक ने कड़े शब्दों में पाखंड का विरोध दर्ज करते हुए कहा है कि आचार्य स्वयं तो पाखंडपूर्ण व ऐशोआराम का जीवन जीते हैं, दूसरी ओर भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाते हैं।

लेखक ने मनुस्मृति के एक श्लोक का सुंदर उदाहरण देते हुए समझाया है कि जल से शरीर के अंग शुद्ध होते हैं, सत्य का आचरण करने से मन शुद्ध होता है, विद्या और तप से प्राणी की आत्मा तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है; परंतु कुछ लोग केवल शारीरिक शुद्धि को ही स्वर्ग प्राप्ति तथा पुण्य प्राप्ति का साधन समझ बैठते हैं।

सत्या शर्मा 'कीर्ति' की लघुकथा 'फटी चुन्नी' पर बात रखनी बेहद जरूरी है। बुआ के घर आई सीमा के कौमार्य को खंडित करने वाला कोई और नहीं, बल्कि फूफा ही है। बुआ के लाख पूछने पर भी वह अपनी उदासी का कारण नहीं बता पाई, ताकि बुआ का घर न टूटे। महिलाओं की शोचनीय स्थिति को यहाँ दर्शाया गया है।

महेश शर्मा की लघुकथा 'लव जेहाद' उल्लेखनीय है। मातृत्व का आत्मीय स्पर्श माँ और बच्चे, दोनों के लिए आत्मीय शक्ति है। इस विषय पर रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' की लघुकथा 'खूबसूरत' की बात करना लाज़िमी है। स्त्री चाहे विश्व सुंदरी हो या कोई मॉडल! घर को घर बनाकर रखने वाली स्त्री ही सभी की चहेती कहलाती है। विजय की पत्नी को देख उसका दोस्त सोचता है कि वही विजय है, जिस पर कॉलेज की लड़कियाँ मरती थीं, पर जब विजय से अपनी पत्नी का परिचय करवाते हुए गर्व से कहा, "यह है मेरी पत्नी सविता" तब विजय के दोस्त को एहसास हुआ कि यह दुनिया की सबसे खूबसूरत महिला है।

जल, नदी, पेड़-पौधे, समुद्र, पर्यावरण, आडंबर, धर्म, ममता सभी विषयों को इस पुस्तक में समेटा गया है। लेखक ने मोती चुनकर इस पुस्तक रूपी माला में पिरोए हैं, जिससे यह पुस्तक अनमोल बन पड़ी है।

सामाजिक और संवैधानिक मूल्य : अंतर्संबंध और अंतर्द्वंद्व

समीक्षक : **पूजा सिंह**

लेखक : **सचिन कुमार जैन**

प्रकाशक : पी.पी. पब्लिशिंग, भारत, राजेन्द्र नगर, गाजियाबाद

पृष्ठ : 114

मूल्य : रु. 315/-

सचिन कुमार जैन की पुस्तक 'सामाजिक और संवैधानिक मूल्य : अंतर्संबंध और अंतर्द्वंद्व' सरल भाषा में मूल्यों के आपसी संबंध और उनके बीच के द्वंद्व को समझाती है। यह मूल्यों को लेकर समझ बनाने वाली एक जरूरी पुस्तक है। मानव-समाज कुछ मूल्यों से संचालित होता है। हर दौर में समाज कुछ तय मूल्यों पर आधारित रहे हैं। ये मूल्य आम लोगों के सौहार्दपूर्ण सहअस्तित्व का सूत्र रहे हैं। बाद में कई मूल्यों ने ऐसी रूढ़ियों या परंपराओं का रूप ले लिया, जिन्होंने समाज पर विपरीत असर डाला। संवैधानिक मूल्यों ने ऐसी विसंगतियों को दूर किया है। सचिन कुमार जैन की पुस्तक 'सामाजिक और संवैधानिक मूल्य : अंतर्संबंध और अंतर्द्वंद्व' इन दोनों मूल्यों के जटिल और परस्पर निर्भरता वाले संबंधों को पारदर्शी ढंग से पाठकों के समक्ष रखती है।

पुस्तक के पहले भाग में उन्होंने सामाजिक मानकों और रूढ़ियों को स्पष्ट करते हुए मूल्यों को परिभाषित किया है। वह धर्म सूत्रों के हवाले से तत्कालीन मूल्यों को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। इसके बाद वह जैन और बौद्ध दर्शनों में उल्लेखित मूल्यों की व्याख्या करते हैं। वह भक्ति आंदोलन के सहारे आगे बढ़ते हुए उन चुनौतियों का जिक्र करते हैं, जो समय के साथ सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक मूल्यों के समक्ष उपस्थित होने लगी थीं। इनमें जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, जाति विभाजन आदि प्रमुख हैं।

वह धर्म और स्त्री जैसे महत्वपूर्ण विषय को उठाते हुए 'स्तन कर' की अमानवीय परंपरा का उल्लेख करते हैं। इसी भाग में वह रुकैया बेगम की दास्तान के माध्यम से स्त्री शिक्षा के संघर्ष को भी रेखांकित करते हैं। इस हिस्से में वह अयोथी थास, सावित्री बाई फुले और जोतिबा फुले एवं ताराबाई शिंदे आदि के जीवन-संघर्ष के माध्यम से तत्कालीन सुधारवादी प्रयासों के बारे में भी बताते हैं।

दूसरे भाग में लेखक ने भारतीय संविधान, संवैधानिक नैतिकता और व्यवस्था के व्यवहार के साथ संवैधानिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखक के मुताबिक प्रेम, न्याय, बंधुता और स्वतंत्रता जैसे संवैधानिक मूल्य बुनियादी तौर पर सामाजिक मूल्य ही हैं।

उन्होंने कई धर्म सूत्रों का विस्तृत विश्लेषण किया है, जिनके बारे में माना जाता है कि हमारे सामाजिक मूल्य वहीं से उत्पन्न हुए। वह महोपनिषद के छठे अध्याय के 71वें श्लोक का उल्लेख करते हैं :

'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।'

यानी "यह मेरा है, यह मेरा नहीं है, इस तरह का विचार छोटे चित्त के लोग रखते हैं, उदार हृदय वाले लोगों के लिए तो पूरी पृथ्वी ही परिवार है।" यह श्लोक न्याय, समता, बंधुता और स्वतंत्रता जैसे मूल्यों को स्पष्ट करता है।

वह गौतम बुद्ध के हवाले से मैत्री और करुणा जैसे मूल्यों की बात करते हैं। जैन धर्म के प्रतिक्रमण के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए वह बताते हैं कि यह पीछे लौटकर या अतीत में जाकर अपने व्यवहार पर नजर डालने की बात कहता है। यह कहता है कि यदि कोई हमारे साथ गलत करता है तो हमें पलटकर उसके साथ गलत व्यवहार नहीं करना है। यह एक सकारात्मक मूल्य ही तो है! पुस्तक बताती है कि भक्ति आंदोलन ने ऊँच-नीच, जातिवाद जैसी सामाजिक बुराइयों का भी खुलकर विरोध किया। भक्तिकाल ने समानता, प्रेम, सह-अस्तित्व और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे मूल्यों पर जोर दिया।

समय के साथ धार्मिक परंपराओं में कई विकृतियाँ जुड़ गईं, जो शर्मनाक थीं। देवदासी और सती प्रथा, स्तन कर, मानव द्वारा मल निस्तारण आदि ऐसी ही प्रथाएँ हैं, जिन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। देवदासी और सती प्रथा या स्तन कर प्रथा जैसी रूढ़िवादी परंपराओं ने महिलाओं को ही प्रभावित किया। इससे मुक्ति की एकमात्र राह स्त्री-शिक्षा और जागरूकता की थी और यह बीड़ा उठाया रुकैया बेगम, फातिमा शेख, सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले जैसे सुधारकों ने।

संवैधानिक मूल्यों की सबसे बड़ी खासियत उनका सार्वभौमिक होना है। संविधान की उद्देशिका हमारे संवैधानिक मूल्यों का उद्घोष करती है और कहती है कि हर व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त होगा, उसकी गरिमा का ध्यान रखा जाएगा और बंधुता को बढ़ावा दिया जाएगा।

दूसरे भाग में लेखक ने 'उद्देशिका' में दर्ज 12 शब्दों के माध्यम से संवैधानिक मूल्यों को परिभाषित किया है। लेखक ने संवैधानिक मूल्यों और संवैधानिक अधिकारों को अलग-अलग परिभाषित करके सराहनीय काम किया है।

अंतिम अध्याय में लेखक ने संवैधानिक भरोसे को परिभाषित किया है। बीते कुछ समय में देशवासियों के बीच जिस तरह के अविश्वास का माहौल निर्मित हुआ है, उसमें संवैधानिक भरोसे के बारे में विस्तृत अध्ययन समझ बढ़ाने वाला है।

यह पुस्तक सामाजिक और संवैधानिक मूल्यों को लेकर सही समझ देने के साथ पाठकों को सजग और सुचिंतित नागरिक बनने में मदद करेगी। सरल-सहज भाषा में लिखी यह पुस्तक हर वर्ग के पाठकों के लिए सहज ही पठनीय है। अलग-अलग कालखंड की उल्लेखनीय घटनाओं का जिक्र पाठकों को पुस्तक के साथ बाँधे रखने में सफल है।

नई दिशा

'नई दिशा' बाल कहानी-संग्रह है, जिसकी लेखिका सुकीर्ति भटनागर हैं। इस कहानी-संग्रह में कुल 12 कहानियाँ संकलित हैं। इनकी कहानियों की कथावस्तु स्वस्थ बाल मनोविज्ञान पर केंद्रित है। ये कहानियाँ जहाँ बालमन का मनोरंजन कराती हैं, वहीं व्यावहारिक रूप में जीवन के विभिन्न घटनाओं के क्रम में संदेश भी देती हैं।

समीक्षक : **डॉ. राम प्रताप सिंह**
लेखिका : **सुकीर्ति भटनागर**
प्रकाशक : साहित्यागार, जयपुर
पृष्ठ : 106
मूल्य : रु. 200/-

बच्चे किसी भी समाज की सबसे बड़ी निधि हैं। आज का बालक कल का नागरिक है। एक बेहतर भावी दुनिया की कल्पना बच्चों को संस्कारित किए बिना संभव ही नहीं है। लेखिका ने 'भूमिका' में लिखा है, 'आज की दुनिया को देखकर मैं डर जाती हूँ कि

कहीं बालमन का भोलापन, सरलता, पावनता आधुनिक युग की चकाचौंध में खो न जाए और नैतिक गुणों को न भूल जाए। 21वीं सदी सूचना क्रांति की सदी है, जहाँ सारी सूचनाएँ घर बैठे उँगलियों पर उपलब्ध हैं। बालमन जिज्ञासु होता है। उसकी जिज्ञासा अनंत होती है। ऐसी परिस्थिति में उन्हें सही दिशा देने के लिए ऐसे साहित्य की जरूरत है, जो उसे अधिक मानवीय और संवेदनशील बनाए। हिंसक और अमानवीय होती इस क्रूर दुनिया में हमारे बच्चों के मानस-पटल पर आज के परिवेश की नकारात्मकता से बचाना ही आज के साहित्यकार की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। इन अर्थों में 'नई दिशा' निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

भूमंडलीकरण के कारण पूरी पृथ्वी एक गाँव के रूप में तब्दील हो गई है। भूमंडलीकरण के कारण देश और दुनिया का खान-पान कब हमारे घरों में आ गया, हमें पता ही नहीं चला। विज्ञापन के इस युग में प्रत्येक नकली प्रोडक्ट असली रूप में दिखता है। ऐसी परिस्थिति में बालमन सबसे अधिक प्रभावित होता है। इसी कारण बच्चे बर्गर और मोमोज, सैंडविच के दीवाने हो गए हैं, जिसके कारण उनका स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है। 'पिचकू, बर्गर और बलवान पेठा' कहानी के माध्यम से लेखिका ने यही संदेश दिया है।

'सुबह का भूला' कहानी में मोहन अहंकार के कारण सबसे उलझ जाता है और सबका अपमान करता है। उसके इस व्यवहार के कारण उस बस्ती के लोग उससे दूरी बना लेते हैं। यह देखकर मोहन की माँ, नानी और पिता जी समझाते हैं कि बस्ती के लोगों से अपनत्वपूर्ण व्यवहार करना उसका प्रथम कर्तव्य है। विनम्रता का पाठ पढ़ाने के लिए उपदेश की जरूरत नहीं, बल्कि व्यवहार में उसकी सीख मिले, जिसका प्रभाव बालमन पर अधिक पड़ता है।

'समाधान' कहानी कोरोना महामारी के समय की त्रासदी को रेखांकित करती है। आज का युवा वर्ग खाओ-पीओ मौज करो और 'यूज एंड थ्रो' की संस्कृति से प्रभावित होता जा रहा है। आत्मकेंद्रित और स्वार्थी होना बाजारवादी संस्कृति का मूल है। ऐसे में कोरोना काल में नौकरानी राधा की जीविका को लेकर बच्चों की संवेदनशीलता इस कहानी को मर्मस्पर्शी बनाती है।

बालमन जीवन का सबसे स्वर्ण काल है। इस काल में अगर नैतिकता की नींव सही पड़ गई तो यही बच्चे देश और दुनिया का नेतृत्व करेंगे। एक अच्छे इनसान को बनाने के लिए ऐसी परिस्थितियों की आवश्यकता है, जिससे उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके। प्रतिस्पर्धा के इस दौर में वे मशीन न बनकर एक संवेदनशील इनसान बनें।

'नई दिशा' कहानी संग्रह के माध्यम से लेखिका ने त्याग, ईमानदारी, धैर्य, विवेक जैसे मानवीय मूल्यों का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया है, इसके साथ ही, प्रतिकूल परिस्थितियों का कैसे सकारात्मक सामना करना है और अपनी ऊर्जा का समाज और देश के लिए कैसे उपयोग करना है, इसे भी बताया गया है। निश्चित रूप में 'नई दिशा' बालमन को दिशा देने का कार्य करती है।

'संकल्प' कहानी में लेखिका ने चित्रित किया है कि कैसे बालमन एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करता है। यह कहानी हमें संदेश देती है कि कैसे ईर्ष्या और द्वेष से मुक्त होकर जीवन जीना चाहिए। वर्तमान में हमारा समाज नकारात्मक होता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में संवेदनशील साहित्यकार अपने समाज को बेहतर बनाने के लिए लेखनी में प्रवृत्त होगा।

संग्रह की भाषा सरल एवं सुबोध है, जिससे बालमन प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। बालमन को एक बेहतर दुनिया के लिए सुखद और स्वस्थ परिवेश आज की आवश्यकता है, जिसमें बच्चे तनावमुक्त होकर अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकें। निश्चित रूप से 'नई दिशा' कहानी-संग्रह एक बेहतर दुनिया के लिए एक सार्थक प्रयास है।

पांडेय जी और छलावे की दुनिया

समीक्षक : **कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'**
लेखक : **डॉ. लालित्य ललित**
प्रकाशक : इंक पब्लिकेशन, करेली, प्रयागराज
पृष्ठ : 196
मूल्य : रु. 250/-

अपने आस-पास की घटनाओं पर तीखी नजर रखते हुए जब व्यंग्यकार उसके संदर्भ में बेबाक तौर पर अपनी प्रतिक्रिया चुटीले अंदाज में प्रस्तुत करता है तब पाठकों के लिए वह पठनीय ही नहीं बन जाता है, बल्कि उन्हें खिलखिलाने को भी विवश कर देता है। लालित्य ललित का यह व्यंग्य-संग्रह बेहद चुटीले अंदाज में रचित है, जिनमें विभिन्न विषयों पर व्यंग्य शैली में रोचक प्रस्तुतियों को पढ़कर मन में गुदगुदी उत्पन्न होती है। प्रस्तुत व्यंग्य-संग्रह में कुल 26 व्यंग्य हैं। हर व्यंग्य का किस्सा अनूठा है।

पहला व्यंग्य है 'पांडेय जी और छलावे की दुनिया'। इसमें यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जिंदगी एक छलावा भर है, इससे बचना चाहिए और घर-गृहस्थी की चिंता करना ही सर्वोपरि है, अन्यथा घर को टूटने में देर कहाँ लगती है। इस व्यंग्य में पात्रों के नाम पाठकों के लिए अलग से हास्य का भाव उत्पन्न करने वाले हैं, जैसे कि राम खेलावन, मनसुखराम, फुलमतिया, टिप्सी मुटरेजा, जटाशंकर, रामू तेली, राम प्यारी आदि। अगले व्यंग्य 'पांडेय जी को दिन में सपना आया' में पांडेय जी को एक सपना आता है, उन्हें देश का एक बड़ा

सम्मान मिलने वाला है और वह सम्मान देश के अनेक कुलपतियों, बड़े साहित्यकारों की उपस्थिति में दिया जा रहा है। राम प्यारी और चीकू कार्यक्रम में बैठे नजर आए। राम प्यारी के हस्बैंड हैं पांडेय जी। वह बड़ी उत्साहित है, जिसको वह नत्थू समझती रही थी अब तक, वह समाज में एक सम्मानित लेखक की भूमिका में नजर आए। इस व्यंग्य में हास्य का पुट भरने वाली कविता है—'मछली जल की रानी है/जीवन उसका पानी है/बाहर निकालो मर जाएगी/सीधे पेट में जाएगी।'

व्यंग्य 'पांडेय जी और एलेक्सा' में रोबोट 'एलेक्सा' से पांडेय जी के मजेदार वार्तालाप को हास्य का पुट देकर प्रस्तुत किया गया है, जैसे कि पुस्तक मेला इस बार खास क्यों है?, राधेलाल हर दूसरे दिन मेले में क्यों जाते हैं?, कल्लू कालिया को आजकल हर जगह सम्मान क्यों मिल रहा है, आजकल महाकवि किस चक्कर में हैं? इत्यादि। पुस्तक मेले से जुड़ा व्यंग्य भी इस संग्रह में समाहित किया गया है, 'पांडेय जी और पुस्तक मेले का शगल'। इस व्यंग्य की यह पंक्ति कितने चुटीले अंदाज में कही गई है, 'आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि मेले में फलाने दिन मेरी पुस्तक की मुँह दिखाई होगी।' आगे एक और पंक्ति इसी तरह है, 'भाई लोगों, मेला तो बहाना है। इसी बहाने कइयों की भड़ास निकल जाती है। आखिर, चुगलियों का बाजार भी गर्म हो जाता है।' अगले व्यंग्य 'पांडेय जी और जन्मदिन का आयोजन' में मित्रों को बुलाकर कुछ सुनने और सुनाने की बात है तो गाजर के हलवे के साथ ही पांडेय जी की विचारधारा 'जो रचेगा आखिर वही बचेगा' आदि पर निर्भीकतापूर्वक व्यंग्य-लेखन किया गया है। इन व्यंग्यों में न केवल मन को गुदगुदाने वाली बातें हैं, बल्कि समाज की विसंगतियों पर भी प्रहार किया गया है, जैसे कि 'पांडेय जी और मीटर की चोरी' में ये पंक्तियाँ—'जब से मीटर चोरी हुआ, पांडेय जी ने सड़ा-सा मुँह बना रखा है। मानो मंडी में सड़े टमाटर बजट में फिट हो गए हों।'

संग्रह में कुछ व्यंग्य ऐसे हैं, जो कि जीवन से जुड़ी गंभीर समस्याओं पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार करते प्रतीत होते हैं, जैसे कि 'पांडेय जी और इलेक्शन की नौटंकी' में बाजार के शौचालय के दरवाजे पर जड़ा ताला, बच्चों के पार्क पर दबंग किस्म के लोगों का कब्जा, सरकार न जीने देगी और न मरने, दूध महँगा, सब्जी महँगी, दवाइयाँ महँगी, इत्यादि। संग्रह के सभी व्यंग्य हँसाते, गुदगुदाते हैं। इनकी भाषा सरल है, कठिन शब्दों का प्रयोग कमतर है तो अंग्रेजी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। व्यंग्य 'पांडेय जी बन बैठे दारोगा जी' में एक दारोगा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालकर आज के गमगीन माहौल को खुशनुमा बनाने का प्रयास किया गया है, जैसे कि 'पांडेय जी ने बिहारी केमिस्ट से पूछा, 'भइया जी! क्या ये गोली है आपके पास?' केमिस्ट बोला, 'दारोगा जी, शाम को दो पत्ते चौकी में ही भिजवा दूँगा।'

पुस्तक में अन्य व्यंग्य शीर्षक हैं—'पांडेय जी और झमेला पुरस्कार का', 'पांडेय जी, सर्दी और आशिकी का लुत्फ', पांडेय जी की किताबें और उसका लोकार्पण', 'झंडू सिंह गुलिया के रोमांस के किस्से', 'पांडेय जी और होली', 'पांडेय जी और तिपहिए की सवारी', 'पांडेय जी, नया साल और एजेंडा' इत्यादि। व्यंग्यकार ने अपने सभी व्यंग्यों में एक प्रमुख पात्र 'पांडेय जी' को केंद्र में रखकर विभिन्न विषयों को समाहित करते हुए व्यंग्य सृजित किया है, जो कि सामाजिक पहलू के साथ-साथ जीवन से जुड़े ढेर सारे अनुभवों को सशक्त व्यंग्य विधा में पिरोये गए लगते हैं।

कुबेर

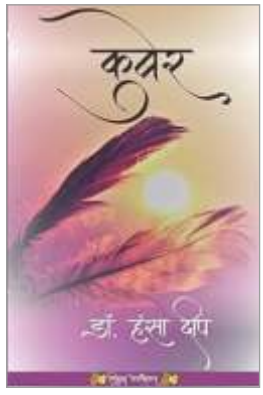

समीक्षक : **डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'**
लेखिका : **डॉ. हंसा दीप**
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सीहोर, म.प्र.
पृष्ठ : 260
मूल्य : रु. 300/-

पुस्तक 'कुबेर' प्रवासी लेखिका डॉ. हंसा दीप की ऐसी कृति है, जिसमें लेखिका ने सिद्ध किया है कि परिश्रम से व्यक्ति कुछ भी पा सकता है। इस मनोरंजक उपन्यास का कथा-नायक है 'धन्नू', जो अपने परिवार की आर्थिक दुर्दशा देखकर गाँव से भाग जाता है। यही धन्नू एक ढाबे पर काम करते-करते 'धनंजय और फिर डी.पी.' बनकर समाजसेवा के क्षेत्र में नाम कमाता है।

इस उपन्यास में कथा-नायक धन्नू का एक प्रतिष्ठित समाजसुधारक व्यक्ति के संपर्क में आकर 'डी.पी.' बनने की कथा को इस अंदाज से बाँधा गया है कि पाठक इस उपन्यास को अत्यंत रुचि से पढ़ने का लोभ छोड़ नहीं पाता। इस उपन्यास में लेखिका ने दो देशों की संस्कृति और समाज को समानांतर उपकथाओं के द्वारा जोड़ा है। वह भारत से अमेरिका के बड़े नगर न्यूयॉर्क तक का सफर अपने पाठक को करवा देती हैं।

इस रोचक उपन्यास में कई ऐसे पात्रों का चरित्र-चित्रण किया गया है, जो मानवीय परंपराओं और जीवन-मूल्यों से पाठक को अनायास ही जोड़ देते हैं। दादा, मेरी और नैन्सी के साथ-साथ

सुखमनी ताई और लाला जी इस उपन्यास के ऐसे पात्र हैं, जो कथा के प्रवाह में अत्यंत प्रभावपूर्ण हैं और इस कृति को लोकप्रिय बनाने में सफल सिद्ध होते हैं। भाई-बहन, पति-पत्नी और पिता-पुत्र के भावनापूर्ण रिश्तों को लेखिका ने कुशलता से उकेरा है।

लाला जी के ढाबे पर कथा-नायक धन्नू के साथ काम करने वाले 'छोटू और बीरू' पाठक की यादों में सदा के लिए जैसे बस जाते हैं। पुस्तक की भाषा सहज और सरल होने के साथ ही पात्रानुकूल भी है। कथा का प्रवाह बड़ी ही सहजता से बढ़ता जाता है, जो पाठक को बाँधे रखता है। इसकी 'भूमिका' में श्री पंकज सुबीर ने लिखा है, 'हंसा जी की विशेषता है कि वे बहुत सरल और सहज शैली में अपनी बात कहती हैं। उनकी यह शैली पाठकों को इतनी सरल लगती है कि हर किसी को यह कहानी अपनी ही लगने लगती है।'

निश्चय ही, प्रवासी कथाकार डॉ. हंसा दीप का यह उपन्यास रोचकता और कथाक्रम की दृष्टि से पठनीय बन गया है। उपन्यास की सहज भाषा का एक नमूना मैं यहाँ देना चाहता हूँ—'सर ने अपने तरीके से समझाया', एक दिन तो सबको जाना है बेटा। कोई जल्दी जाता है तो कोई देर से, लेकिन जाते तो सभी हैं, जाना ही पड़ता है। यहाँ किसी के लिए भी कोई स्थायी आवास नहीं है। यही नियम है प्रकृति का बनाया हुआ, जिसे पालन करने के अलावा हमारे पास कोई चारा नहीं है।' निष्कर्षतः, यह उपन्यास पठनीय है और रोचकता से भी परिपूर्ण है। पाठक इसका स्वागत करेंगे।

समीक्षक : **रवि कुमार झा**
लेखक : **प्रो. (डॉ.) रामस्वार्थ ठाकुर**
प्रकाशक : कल्पना प्रकाशन, आदर्श नगर, दिल्ली
पृष्ठ : 396
मूल्य : रु. 995/-

हिंदी प्रत्यालोचना के तत्व और प्रवृत्तियाँ —एक अध्ययन

आलोचना 'लोचन' शब्द का संबंधी है। लोचन का स्वरूप तीन तरह का है—वह दृश्य बिंब का आधार है, स्वयं बिंब है तथा दृश्य और द्रष्टा के बीच का आंगिक है। आलोचना का संबंध लोचन से जोड़ा जाता है—'लुच' धातु में नंद ग्रह पचादि धातु का 'ल्य' प्रत्यय लगाकर लोच बना, फिर 'अन्' जोड़कर 'लोचन' शब्द का निर्माण करना और उसे नेत्रवाची संज्ञा बनाना। लोचन को मात्र दृश्य पदार्थ के मूर्त रूप तक ही सीमित न रखकर अमूर्त रूप में उसे आंतरिक ज्ञान (प्रज्ञा) से भी युक्त किया गया। इसी लोचन में 'आङ्' उपसर्ग लगाकर 'आलोचना' शब्द का निर्माण हुआ, जिसके पर्याय रूप में 'समीक्षा' शब्द का प्रचलन हुआ। मानव की मूल प्रवृत्ति में ही आलोचना है। इनसान हर आम और विशेष विषय पर आलोचना करता है। किसी से जुड़े सकारात्मक और नकारात्मक बिंदु तक आलोचना के माध्यम से ही पहुँचा जाता है।

डॉ. गुलाबराय का कथन है, 'आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रुचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।' आलोचना, साहित्य की व्याख्या करती है। कृति का सम्यक मूल्यांकन, जिसमें इंद्रिय, बुद्धि, मन और हृदय को समन्वित किया गया हो, पाश्चात्य कवि-आलोचक मैच्यू ऑर्नल्ड के शब्दों में आलोचना है। कुछेक आलोचक तो साहित्य-समीक्षा को सर्जन नहीं मानते, लेकिन आलोचना सर्जनात्मक साहित्य है। कवि भाव और कल्पना के समन्वय से काव्य-सर्जन करता है, जबकि आलोचक बुद्धि एवं भाव के सामंजस्य पर आलोचना करता है। समन्वय ही काव्य का आदर्श रहा है, जो युगचेतना का आकांक्षी है। भावन और सर्जन का ऐक्य स्थापन ही वस्तुतः आलोचना है। 'द डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर' में शिप्ले ने कहा कि 'प्रभाव, व्याख्या तथा मूल्यांकन का सामंजस्य ही आलोचना का वास्तविक एवं समीचीन स्वरूप है।'

किसी के व्यक्तिगत नजरिए से खास साहित्य से भाव ग्रहण करने की प्रक्रिया ही आलोचना है। एक ही रचना को जितने लोग पढ़ेंगे, उतने प्रकार से समझेंगे, उतने प्रकार से आलोचना करेंगे। भाव के मनोवैज्ञानिक विकास-क्रम में पहली स्थिति स्वाभाविक प्रभावगत प्रतिक्रिया की होती है। जहाँ पाठक अपने इस प्रभाव की बिना किसी तटस्थ विश्लेषण एवं व्याख्या के मात्र भावाभिभूत अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है, वहीं प्रभावाभिव्यंजक (या रचनात्मक) समीक्षा का उदय होता है। कार्लाइल ने अपनी परिभाषा में इसी का संकेत किया है : 'Literary criticism is nothing and should be nothing but the recital of one's personal adventures with a book' अर्थात् (समीक्षा न तो और कुछ है तथा उसे न और कुछ होना चाहिए, सिवाय व्यक्ति के किसी पुस्तक के प्रति निजी प्रयत्नों की गाथा के।) इसी को और स्पष्ट करते हुए कार्लाइल ने कहा है, "To have sensations in the presence of a work of art and to express them that is the function of criticism for the impressionistic critic" यानी 'प्रभाववादी समीक्षक का व्यापार मात्र इतना है कि किसी कलाकृति के समक्ष संवेदन का अनुभव और उन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करे।'

प्रत्यालोचना आलोचना के बाद की कड़ी है। किसी विषय पर दो व्यक्तियों की विभिन्न दृष्टियों में से एक का परिणाम आलोचना है, दूसरे का परिणाम प्रत्यालोचना है। अंतर इतना ही है कि जो पहले

लिखी गई, उसका नाम 'आलोचना' पड़ा और जो उस आलोचना को लक्ष्य कर बाद में लिखी गई, वह 'प्रत्यालोचना' कहलाई। हिंदी आलोचना, जो भारतेंदु-युग की पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तक रिव्यू से प्रारंभ होती है, इसे इसके तमाम परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए एक अत्यंत उपयोगी किताब हो सकती है।

आलोचना के बदलते स्वरूप के साथ-साथ प्रत्यालोचना का स्वरूप भी बदलता है। इसका कारण प्रत्यालोचना का आलोचना में बीजवत् निहित रहना है। किसी भी विचार को आगे बढ़ाने में आलोचना-प्रत्यालोचना का पारस्परिक सहयोग रहता है। वे दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों मिलकर किसी विचारधारा को द्विगुणित कर इतना उछालते हैं कि उनमें से विचारों की लहरें-पर-लहरें दीर्घकाल तक उठती-गिरती रहती हैं।

ठाकुर जी हिंदी प्रत्यालोचना के काल विभाजन, पृष्ठभूमि और इतिहास पर विस्तार से चर्चा करते हैं। वे 1850 से 1900 ई. तक के समय (भारतेंदु युग) को 'उदय काल' कहते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, आदि इस युग के यशस्वी पत्रकार और लेखक थे। 1900 से 1920 ई. तक के समय (द्विवेदी युग) को 'विकास काल' कहते हैं। 1920 से 1940 ई. (छायावाद) को 'उत्कर्ष काल' कहते हैं। उत्कर्ष युग के आलोचकों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पं. भगीरथ प्रसाद दीक्षित, मिश्रबंधु, कृष्ण बिहारी मिश्र, श्यामसुंदर दास, भवानीप्रसाद याज्ञिक, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', हेमचंद्र जोशी, गौरीशंकर हीरानंद ओझा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आलोचना के साथ इस युग में प्रत्यालोचना भी पर्याप्त लिखी गई। सन् 1940 से 1960 ई. (छायावादोत्तर युग) को 'स्थिरता काल' कहा है। सन् 1940 ई. के बाद हिंदी आलोचना के क्षेत्र में स्थिरता का आभास मिलने लगता है। इस युग के आलोचकों में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. नगेंद्र, डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. शम्भूनाथ सिंह, डॉ. रांगेय राघव, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचंद्र गुप्त आदि उल्लेख्य हैं। सन् 1960 से 1970 के बाद के समय को 'ह्रास काल' कहा गया है। चूँकि शोध 1971 में लिखा गया, इसीलिए 1970 तक का जिक्र है। इसका कारण यह है कि इस युग में अधिकांश आलोचनाएँ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम की दृष्टि में रखकर लिखी गईं। इस युग के मुख्य आलोचक धर्मवीर भारती, नामवर सिंह, लक्ष्मीकांत वर्मा, मोहन राकेश, कमलेश्वर, जगदीश गुप्त, अमृत राय आदि हैं।

ठाकुर जी की यह किताब 1850 से 1970 तक के हिंदी आलोचना के बीजांकुर होने से लेकर इसके विकास और स्वरूप को स्पष्ट शब्दों में बताती है। अपने तरह की यह इकलौती किताब है, जो हिंदी आलोचना के संदर्भ में भारतीय परंपरा के जड़ से बात शुरू कर आधुनिक आलोचना-प्रत्यालोचना पर विमर्श करती है। यह इतनी छात्रोपयोगी किताब है कि इसे विश्वविद्यालयों के सिलेबस में होना चाहिए।

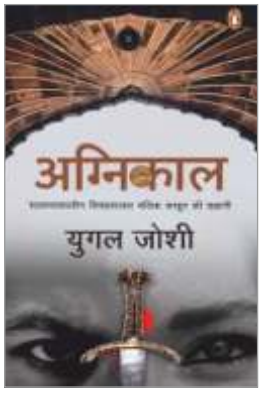

समीक्षक : **रजनीश दीक्षित**
लेखक : **युगल जोशी**
प्रकाशक : पेंगुइन स्वदेश, दिल्ली
पृष्ठ : 368
मूल्य : रु. 499/-

अग्निकाल

ईसा के बाद की दूसरी सहस्त्राब्दी का आरंभ भारतीय इतिहास का एक ऐसा कालखंड है जब राजसत्ता, संस्कृति और मूल्यों का इतनी तेज़ी से और टकराहट के साथ रूपांतरण हुआ कि अगले लगभग एक सहस्त्र वर्षों तक भारतवर्ष वस्तुतः आक्रांताओं द्वारा संचालित रहा, चाहे वह तुर्क हो, मुग़ल या फिर अंततः ब्रिटिश। विजेता आक्रांताओं ने इस पूरे एक हजार साल अपने राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक वर्चस्व का परचम इस ताकत और क्रूरता से लहराया कि दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से चली आ रही सनातन परंपरा, सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति क्षत-विक्षत होकर पार्श्व में चली गई।

12वीं शताब्दी से शुरू हुए तुर्की हमलों ने भारतीय सभ्यता के ऊपर एक पूर्णतः अलग और मुक़ाबिल विदेशी सभ्यता थोप दी। लगभग वर्ष 1192 से आरंभ होकर अगले डेढ़ सौ वर्षों का समय परंपरागत भारतीय समाज और राजाओं पर नए आक्रांताओं की अग्निवर्षा सरीखा था। प्रख्यात लेखक और विद्वान प्रोफेसर शाफ़े किदवई लिखते हैं, 'लेकिन इसने पारंपरिक शासक वर्ग और सांस्कृतिक लोकाचार को कैसे विस्थापित किया और कैसे भारत पर विदेशी सभ्यता को थोपा गया, इसके बारे में आज तक ठीक से लिखा या शोध नहीं किया गया है। तुर्क आक्रमणकारी हमारी दृष्टि से बच जाते हैं और लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास बोध पर स्पष्टता के साथ प्रकाश नहीं डाला जाता है। सच तो यह है कि अरब, फ़ारसी और तुर्की इतिहासकारों ने भी उस काल के इतिहास का मानवीय नाटकीयता के साथ वर्णन अब तक नहीं किया है।'

प्रोफेसर किदवई आगे लिखते हैं, 'दिल्ली सल्तनत के कालखंड की भारतीय मीमांसा जिस प्रकार की चेतना को जन्म देने के लिए जिम्मेदार है, उसके वर्तमान परावर्तन में दुख, खीज और प्रतिकार का बोध हमें एक ऐसे चिंतन की ओर ले जाता है, जो उस कालखंड को 'अग्निकाल' का नाम देता है। यह उपन्यास उसी अग्निकाल के चिंतन को जीने का खूबसूरत प्रयास है, जिसको युगल जोशी ने मलिक

काफ़ूर के चरित्र में फिर से जीवंत कर दिया है। इस उपन्यास को पढ़ना, मानो स्वयं को उस समयकाल के रुक्ष दर्पण में देखना है। उस समय के भारत की आहत मानसिक संवेदना का जीवंत चित्रण इस उपन्यास को एक प्रत्यक्ष अनुभव बना देता है।'

अग्निकाल इतिहास की पुस्तक नहीं है, लेकिन इतिहास को इस तरह चित्रित करती हुई चलती है कि हर क्षण आप इस कहानी के नायक माणिक अर्थात मलिक क़ाफ़ूर के साथ चलते हैं, जैसे उसके साथ उसके जीवन का एक-एक पल जी रहे हैं, जैसे टाइम मशीन में बैठकर आप ख़िलजी काल में चले आए हैं और आपकी आँखों के सामने सब कुछ घट रहा है।

अग्निकाल एक प्रतिभाशाली हिंदू किशोर के सल्तनत काल के सबसे बड़े सेनापति मलिक क़ाफ़ूर बनने की कहानी है। एक छोटी, पर बेहद खूबसूरत युवावय के प्रेम से आरंभ होने वाली इस कहानी में एक दुखद मोड़ आता है जब प्रेमिका की हत्या कर दी जाती है और प्रेमी को हिजड़ा और गुलाम बनाकर दास-मंडी में बेच दिया जाता है। एक गुलामी से दूसरी गुलामी, एक हरम से दूसरे हरम, एक लड़ाई के मैदान से दूसरे लड़ाई के मैदानों से होता हुआ मलिक क़ाफ़ूर की जिंदगी का चरम उसका अपरोक्ष रूप से दिल्ली का सुल्तान बनने में होता है, लेकिन अंततः उसकी महत्वाकांक्षा ही उसका शिकार कर देती है।

यह व्यक्तित्व के रूपांतरण की अद्भुत कहानी है। नायक नैतिक मानवीय मूल्यों एवं प्रतिशोध और महत्वाकांक्षा के बीच डूबता-तैरता रहता है। अच्छाई और बुराई के बीच का यह द्वंद्व इस उपन्यास में बेहद रोचकता से उभरकर सामने आता है। परिदृश्य इतने वास्तविक रूप से सामने आते हैं कि आप गुजरात से दिल्ली, दिल्ली से देवगिरी, देवगिरी से वारंगल और होयसल होते हुए मदुरै की यात्रा में एक क्षण को भी यथार्थ से विलग नहीं होते। इन सबके बीच हरम और दरबार की एक सतत चलते रहने वाली दमघोंटू और षड्यंत्रकारी हवा है, जिसमें स्वयं सुल्तान, उसकी बेगमें, तमाम रिश्तेदार, सूफ़ी खानकाह, अमीर-उमरा, पीर और मुरीद जी रहे हैं।

उपन्यासकार युगल जोशी ने मलिक क़ाफ़ूर की हैरतअंगेज़ और घटनाओं से भरी ज़िंदगी के सूत्र वास्तविकता और कल्पना के धागों में बड़ी सहजता से पिरोए हैं। कहानी के पहले पृष्ठ से ही एक अजीब-सी उत्कंठा पाठक को घेर लेती है। उस काल के जीवन का भय, जब सब कुछ अनिश्चित, अमानवीय और अकल्पनीय था, जब मनुष्यत्व बचा पाना संभव ही नहीं था, हर पृष्ठ पर छाया है। सांकेतिक रूप से दिन के आठ प्रहरों में बँटी यह कथा शांत सोमनाथ की सुंदर सुबह से शुरू होती है और इसका मार्मिक अंत रात्रि के आख़िरी प्रहर में सीरी के किले में होता है।

सहज भाषा, ऐतिहासिक तथ्यों के साथ उत्कृष्ट कल्पनाशीलता, तेज़ घटनाक्रम और कथ्य की रवानगी अग्निकाल को हिंदी भाषा के बेहतरीन ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में स्थापित कर देती है।

पाठकीय प्रतिक्रिया

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' 'नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला' के दौरान खरीदी। पहली ही बैठक में पूरी पत्रिका पढ़ गई। प्रायः पत्रिका पढ़ने का शौक तो मुझे स्कूल के दिनों से ही था, लेकिन साहित्य से जुड़ाव गत चार-पाँच वर्षों से हुआ है। इस बीच मैंने कई पत्रिकाएँ पढ़ीं, लेकिन यह पत्रिका पढ़कर अलग ही अहसास हो रहा है। पत्रिका में डॉ. कमलेश सरोहा का एक लेख है, 'पहली महिला अध्यापिका : माता सावित्री बाई फुले'। इस लेख को पढ़कर मुझे सावित्री बाई फुले के बारे में कई सारी ऐसी जानकारियाँ मिली हैं, जो मुझे पहले नहीं पता थीं। यह लेख बहुत ही सारगर्भित है। 'शांतिनिकेतन के विश्व धरोहर बनने का अभिप्राय' जैसे कई लेख बहुत ही सारगर्भित हैं।

–सुधा यादव, आईआईएमसी, नई दिल्ली

द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक-एक कर कई अंक देखे, उनके विषय और लेखों को पढ़ा। पत्रिका के सभी अंक और लेख बेजोड़ हैं। प्रत्येक लेख आपको एक नई साहित्यिक यात्रा पर ले जाता है। प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा जी ने अपनी लेखनी से उत्कृष्ट संपादकीय प्रस्तुत कर बहुत ही महती कार्य किया है। 'वैश्विक धरातल पर हिंदी की स्वीकार्यता', बाल साहित्य विशेषांक का 'पहला कदम', 'भारतीय ज्ञान परंपरा' आदि लेख ज्ञानवर्धन करते हैं और चिंतन के बिंदु छोड़ते हैं, वहीं प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे के संपादकीय लेख 'साहित्य, संस्कृति और पढ़ना' और 'बहुभाषी भारत : एक जीवंत परंपरा' पठन-पाठन संस्कृति को आधार देते हुए प्रतीत होते हैं। कुशल संपादन के लिए संपादक को बहुत-बहुत शुभकामनाएँ!

–जोगिन्दर, न्योरी जलालपुर, फतेहपुर, उत्तर प्रदेश

दुनिया में कोई ऐसा देश नहीं है, जिसमें भाषायी विविधता पाई जाती है। 'पुस्तक संस्कृति' के जनवरी-फरवरी 2024 के संपादकीय में प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने ऐसी ही भाषायी विविधता पर चर्चा की है। उन्होंने बताया है कि शिक्षा मातृभाषा में हो तो परिणाम और बेहतर हो सकते हैं। यह बालक के समग्र व्यक्तित्व के विकास का बहुत ही सक्षम और सशक्त माध्यम है। इसी वैविध्यपूर्ण संस्कृति को दर्शाने के उद्देश्य से 'नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2024' के केंद्रीय विषय का चुनाव करना बहुत ही उल्लेखनीय कार्य है। ज्ञानवर्धक और विचारोत्तेजक लेख के लिए प्रधान संपादक को साधुवाद!

–शशि ओमरे, भोपाल

लंदन पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

12 से 14 मार्च, 2024 तक त्रिदिवसीय 'लंदन पुस्तक मेला 2024' में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने शिरकत की। इस वैश्विक मंच में 50 से अधिक भारतीय प्रकाशकों ने भाग लेकर भारतीय प्रकाशन उद्योग की सामूहिक क्षमता का प्रदर्शन किया। इसने बहुभाषी भारत का भी प्रदर्शन किया। इंडिया नेशनल स्टैंड का उद्घाटन श्री सुजीत जॉय घोष ने एलबीएफ के निदेशक श्री गैरेथ रैपली की उपस्थिति में किया। इस अवसर पर न्यास के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे और न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक अन्य प्रकाशकों, व्यापारियों, खरीदारों, साहित्यकारों, वितरकों, अनुवादकों के साथ उपस्थित रहे।

उद्घाटन सत्र में 'भारत में बहुभाषी बाजार की गतिशीलता' पर पैनल चर्चा भी आयोजित हुई। इस अवसर पर न्यास-अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे, न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक, प्रकाश बुक्स से श्री प्रशांत पाठक, वाणी प्रकाशन से सुश्री अदिति माहेश्वरी, ओम बुक्स इंटरनेशनल से श्री अजय मागो उपस्थित रहे। संचालन न्यास में संपादक सुश्री कंचन वांचु शर्मा ने किया।

सिक्किम पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के पूर्वी क्षेत्रीय कार्यालय और जिला प्रशासन, गंगटोक के संयुक्त तत्वावधान में 18-20 मार्च, 2024 को सिक्किम पुस्तक मेले का आयोजन किया गया। इस दौरान श्री वी.बी. पाठक, आईएएस, मुख्य सचिव, सिक्किम; श्री ए.के. सिंह, आईपीएस, डीजीपी, सिक्किम और श्री तुषार निखारे, आईएएस, सिक्किम के जिला मजिस्ट्रेट ने मेले का दौरा किया और न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का अवलोकन किया।

बोलोना पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

08 से 11 अप्रैल, 2024 को इटली में आयोजित 'बोलोना पुस्तक मेले' में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने सक्रिय सहभागिता की। इस दौरान इंडिया स्टैंड का उद्घाटन श्री सुब्बू रमेश, द्वितीय सचिव (भारत का दूतावास, रोम) और सुश्री लेडी जैक्स थॉमस, बोलोना बुक प्लस की उपस्थित में किया गया। इस अवसर पर प्रकाशक, व्यापारी, खरीदार, साहित्यकार, वितरक, अनुवादक आदि उपस्थित रहे। इस दौरान 'भारत में सामान्य और बाल साहित्य प्रकाशन के लिए वैश्विक अवसर' विषय पर पैनल चर्चा का आयोजन किया गया। पैनल चर्चा में श्री प्रशांत पाठक, सुश्री ऋचा झा, श्री अजय मागो, श्री अनुज चावला उपस्थित रहे। संचालन न्यास में संपादक सुश्री कंचन वांचु शर्मा ने किया।

द्विभाषी पुस्तकों को विकसित करने की कार्यशाला आयोजित

डोगरी और कश्मीरी भाषाओं से जुड़ी द्विभाषी पुस्तकें विकसित करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र तथा जम्मू और कश्मीर कला, संस्कृति और भाषा अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह आयोजन जम्मू में 'तवी साहित्य लोक उत्सव' के दौरान किया गया। इस अवसर पर 'मातृभाषा को बढ़ावा देने में द्विभाषी पुस्तकों की भूमिका' पर पैनल चर्चा का आयोजन भी किया गया।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने भेंट कीं 35 स्कूलों को पुस्तकें

कक्षाओं में समर्पित रीडिंग कॉर्नर विकसित करने के उद्देश्य से लगभग 35 स्कूलों को 2000 से अधिक पुस्तकें भेंट कीं। इन पुस्तकों को हर आयु वर्ग को ध्यान में रखते हुए चुना गया था। इसका उद्देश्य युवा पाठकों को मोबाइल की आभासी दुनिया से निकालकर पुस्तकों की मनोरम दुनिया से रू-ब-रू कराना है। पुस्तकें अंतहीन कल्पनाओं और रोमांच को अपने आप में समेटे होती हैं।

न्यास मुख्यालय में टैगोर इंटरनेशनल स्कूल के बच्चों ने किया भ्रमण

वसंत विहार स्थित टैगोर इंटरनेशनल स्कूल के बच्चों ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्यालय का भ्रमण किया। इस दौरान युवा पाठकों के लिए कहानी सत्र का आयोजन किया गया। सुश्री सीमा वाही मुखर्जी ने 'इंद्रधनुष की कहानी' का वाचन किया। इस कहानी सत्र ने न केवल विद्यार्थियों का मनोरंजन किया, बल्कि शांति, एकता और मित्रता के मूल्यवान पाठ को भी समझाया। तत्पश्चात बच्चों ने मोबाइल पुस्तक प्रदर्शनी से अपनी पसंद की पुस्तकें पढ़ीं और खरीदीं। एक अन्य सत्र में कहानीकार सुश्री स्वाती सिन्हा ने अफ्रीकी लोककथा सुनाकर बच्चों का मनोरंजन किया।

पुस्तकें मिलीं

द लॉज़ ऑफ ह्यूमन नेचर

रॉबर्ट ग्रीन

अनुवाद : **मदन सोनी**

यह पुस्तक चरित्र निर्माण, अपने स्याह पक्ष का सामना करने, समूह के आकर्षण का प्रतिरोध करने और अपने ध्येय का बोध हासिल करने से संबंधित शिक्षाओं से भरी है। चाहे आप कार्य-स्थल पर हों, रिश्ते निभा रहे हों, या अपने आस-पास की दुनिया को समझने और गढ़ने का प्रयत्न कर रहे हों, इसके नियम सभी मोर्चों पर सफलता, विजय और आत्मरक्षा की उत्कृष्ट युक्तियाँ पेश करते हैं—एक ऐसी मार्गदर्शिका के रूप में, जिसकी मदद से आप अपने आपको सर्वाधिक शक्तिशाली रूप को सामने ला सकें।

मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल

पृ. 342; रु. 399.00

कही-अनकही

संगीता सहाय

प्रस्तुत पुस्तक में समाहित किये गए लेखों में विश्व की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति वाले हमारे भारत की बहुविध और बहुरंगी छटाओं का वर्णन किया गया है। पुस्तक में समाज अवरोधी मुद्दों, उसके होने की वजहों और उनके निदान की बात कही गई है। पुस्तक के ज्यादातर आलेख सामाजिक सरोकारों वाले हैं, तो कुछ अलग विषयों और कुछ समय-सापेक्ष मुद्दों पर भी हैं।

बोधि प्रकाशन, जयपुर

पृ. 120; रु. 150.00

दीनदयाल शर्मा के चुनिंदा शिशु-गीत

दीनदयाल शर्मा

इस पुस्तक में ऐसे शिशु-गीत हैं, जिन्हें पाँच वर्ष तक के बच्चे कंठस्थ करके अपने स्कूल में सुना सकें। पुस्तक में शिशु-गीतों की संख्या 56 है। इन गीतों के शीर्षक बहुत ही प्रिय लगने वाले हैं, जैसे कि चंदा मामा, मेरी नानी, टी.वी., सूरज एक सितारा, पिचकारी, खेलेंगे हम, कान में कुर्र, खों-खों बंदर, हवाई जहाज, कुत्ता भौंका, तबड़क-तबड़क, घर, बादल, बारात, मछली, गधा रेंका, आजादी दिवस आदि। गीत बिलकुल सरल भाषा में हैं। हर गीत में मात्र चार पंक्तियाँ ही हैं, ताकि नन्हे शिशु इन्हें जल्दी याद कर सकें।

नवकिरण प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान

पृ. 64; रु. 150.00

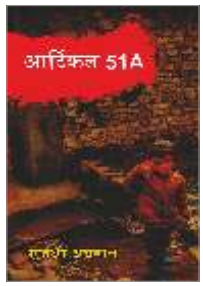

आर्टिकल 51A

राजश्री अग्रवाल

यह पुस्तक राष्ट्र-निर्माण की दिशा में, राष्ट्रीय चेतना को आंदोलित करने में सक्षम है। यह स्कूल-कॉलेजों के 'मॉरल साइंस' के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जानी चाहिए। पुस्तक में लेखिका ने प्रासंगिक रूप से कारगिल युद्ध एवं ताजातरीन 'डोकलाम विवाद' से लेकर युक्रेन-रूस तक के संदर्भ उजागर किए हैं। यही नहीं, लेखिका ने सियासत, प्रभुत्व की लिप्सा, बुद्धिजीवियों के छद्म एवं व्यवस्था की विद्रूपताओं को भी चिह्नित किया है।

आर.के. पब्लिकेशन, मुंबई

पृ. 256; रु. 550.00

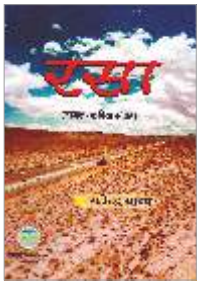

रसा

(गजल/कविता-संग्रह)

राजेन्द्र यादव

यह पुस्तक बेहतरीन गजलों एवं मर्मस्पर्शी कविताओं का संग्रह है। कवि ने अपने आस-पास जो देखा, अनुभव किया, उसे अपनी कविताओं में समाहित किया है। इनकी कविताएँ सच्चाई से जुड़ी हुई हैं। कवि स्वाभिमान को अपने जीवन की सुंदरता मानते हैं, अतः समाज की कुरीतियों पर प्रहार करते हैं। गाँव की पगडंडी, खेत, तालाब, बगिया आदि का सौंदर्य भी कविताओं में भरपूर है। इन कविताओं के माध्यम से समाज के दर्द, प्रकृति प्रेम, महबूब से गिले-शिकवे, हिंसा, नफरत पर मोहब्बत की जीत प्रस्तुत करने का सफल प्रयास है।

गुफ्तगू पब्लिकेशन, हरवारा, प्रयागराज

पृ. 80; रु. 200.00

चुलबुली बाल कविताएँ

मीना गुप्ता

यह पुस्तक दो खंडों में रचित है। खंड-1 में चार से छह वर्ष के बच्चों के लिए कविताएँ हैं तथा खंड-2 में सात से नौ वर्ष के बच्चों के लिए। इन कविताओं में छोटे-छोटे पद और सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। बच्चे इन्हें सुनकर स्वयं गाने को बाध्य होंगे। खंड-1 गणेश वंदना से तो खंड-2 सरस्वती वंदना से प्रारंभ होता है। सभी रचनाएँ यथार्थ, कल्पनात्मक, रोचकता से भरपूर एवं मनोरंजक हैं। 'एक बड़े राजा का बेटा', 'फुर्र से उड़ गई', 'दस टकों का हिसाब' कविताएँ छोटे बच्चों को गिनती सिखाने के लिए बहुत उपयोगी हैं।

निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा

पृ. 132; रु. 150.00

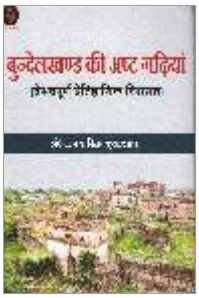

बुंदेलखंड की अष्ट गढ़ियाँ

(वैभवपूर्ण ऐतिहासिक विरासत)

डॉ. अजय सिंह कुशवाहा

अष्ट गढ़ियों के इतिहास से जुड़े अनेक पहलुओं को सामने लाने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है। अष्ट गढ़ियों की स्थापना, उनके किलों का निर्माण, उनसे जुड़ी दंत-कथाओं, परंपराओं आदि तथ्यों की प्रामाणिक जानकारी के साथ, यह पुस्तक अष्ट गढ़ियों के तत्कालीन शासकों का इतिहास, वास्तुकला आदि विषयों का भी वर्णन करती है। पुस्तक का उद्देश्य अष्ट गढ़ियों के इतिहास को प्रामाणिक साक्ष्यों के साथ संकलित कर पाठकों को एक ही स्थान पर उपलब्ध कराना है।

शतरंग प्रकाशन, लखनऊ

पृ. 150; रु. 550.00

सपनों की रोशनी

कैलाश सत्यार्थी

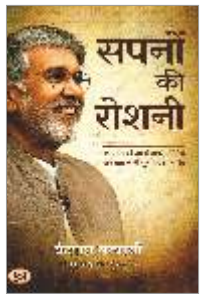

नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित, कैलाश सत्यार्थी के अनुभवों पर आधारित प्रस्तुत पुस्तक में ऐसी कहानियाँ हैं, जिनके माध्यम से लेखक ने बताया है कि आशा और निराशा, स्पष्टता और असमंजस, सफलता और असफलता, खुशी और दुख, आसानी और मुश्किलों के बीच सहज भाव से आगे बढ़ते हुए सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ी जा सकती हैं।

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

पृ. 184; रु. 250.00

सफर-ए-शहादत

डॉ. रणजीत सिंह अरोरा अर्श

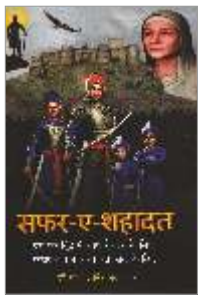

लेखक ने सफर-ए-शहादत पुस्तक में सिख इतिहास के विभिन्न शहीदों के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है। इस पुस्तक के माध्यम से पाठक को सिख पंत के गौरवशाली सफर एवं परंपरा से परिचित होने का अवसर प्राप्त होगा। इसमें सिख धर्म के इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर 25 आलेखों का संग्रह किया गया है।

अर्श प्रकाशन, पुणे, महाराष्ट्र

पृ. 192; रु. 400.00

पत्तल

मुकेश पोपली

कहानी संग्रह 'पत्तल' में लेखक ने 12 कहानियाँ संकलित की हैं, यथा—पत्तल, माणक बाबू, केलेवाला, जगतपुर का कुआँ, केशिनी केसर, उम्मीदों के साये, नुनू, एक रद्दी बहस, कत्थई आँखें, दीवानी, ख्वाब देखता ख़त तथा हेड एंड टेल। इन कहानियों के माध्यम से लेखक ने जीवन के विभिन्न पहलुओं और अनेक विषयों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है।

नवकिरण प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान

पृ. 132; रु. 250.00

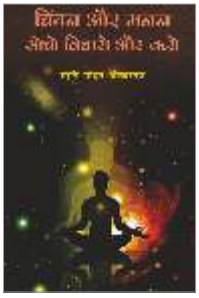

चिंतन और मनन
सोचो, विचारो और करो

ऋषि मोहन श्रीवास्तव

प्रस्तुत पुस्तक में जीवन की व्यस्तता के बीच सोचने-समझने और विचार करने के लिए विभिन्न विषय दिये गए हैं, जैसे—आत्मसम्मान है बड़ी दौलत, सद्व्यवहार बनाता है आपको सफल, आत्मविश्वास बहुत ज़रूरी, सिर्फ अपने लिए न जियें, अहंकार से बचें आदि। लेखक ने इस पुस्तक के माध्यम से रोज़मर्रा के जीवन में प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष आने वाले इन विषयों पर सोचने एवं विचार करने का अवसर दिया है।

दिल्ली बुक सेंटर, दिल्ली

पृ. 60; रु. 250.00

काँटों के बीच खिला फूल

मंजु गुप्ता

यह पुस्तक 128 कविताओं का संकलन है, जिसमें बच्ची के जन्म से लेकर वृद्ध होने तक के जीवन की संघर्षमय यात्रा का काव्यात्मक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। इसमें लेखक ने स्त्री जीवन के संघर्षों एवं अनुभवों को कविताओं के माध्यम से बयाँ किया है। पुस्तक में संकलित कुछ कविताओं के शीर्षक हैं—इक्कीसवीं सदी की लड़की, तिनका-तिनका घोंसला, चिड़िया मेरे भीतर है, शिक्षा ही करेगी आलोकित, कुदरत का करिश्मा, माँ, मेरी दुनिया आदि।

मेधा बुक्स, दिल्ली

पृ. 224; रु. 300.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : _____

पता : _____

जिला : _____ शहर _____ राज्य _____ पिन कोड _____

फोन : _____ ई-मेल : _____

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) _____ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) _____ ड्राफ्ट संख्या _____ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी _____ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,

नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000021
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

सदस्यता के आवेदन हेतु इस सदस्यता प्रपत्र की प्रतिलिपि का उपयोग करें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

सामूहिक हित का दीप जले : मन की बात @100

प्रस्तावना : **प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी**

हिंदी अनुवाद : **डॉ. शिवानी कोहली**

यह पुस्तक प्रधानमंत्री जी के मन की बात के 100 एपिसोड पूरे होने पर रचित है। यह परिवर्तनकारी कार्यक्रम की भावना, इसके प्रभाव और भारत के सामाजिक ताने-बाने को आकार देने वाले दूरदर्शी विचारों को समाहित करती है। यह राजनीति से परे है तथा लोगों और उनके नेता के बीच के संबंध के रूप में प्रकट होती है।

पृ. 336; रु. 470.00

एग्जाम वॉरियर्स

नरेंद्र मोदी

प्रस्तुत पुस्तक न केवल छात्रों, बल्कि उनके माता-पिता और शिक्षकों के लिए भी प्रेरणादायी है। जीवंत और संवाद शैली में लिखी, चित्रों के उपयोग और व्यायाम एवं उपयोगी योग आसनों के विवरण से सज्जित यह पुस्तक न केवल परीक्षाओं में सफलता दिलाने में, बल्कि जीवन में कठिनाइयों का सामना करने में भी एक दोस्त साबित होगी। पुस्तक में दी गई सूचनाएँ उपयोगी और विचारोत्तेजक हैं। भारत ही नहीं, दुनियाभर के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी एवं मार्गदर्शक है।

पृ. 262; रु. 150.00

जीवन, जिज्ञासा और शास्त्र

एस.सी. मिश्रा

प्रस्तुत पुस्तक प्राचीन भारतीय ग्रंथों के आधार पर भारत के प्राचीन गौरव और गरिमा की न केवल स्थापना का एक सर्वथा भिन्न एवं तथ्यपरक प्रयास है, बल्कि जीवन की अनेकशः जिज्ञासाओं का समाधान भी खोजने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए मनुष्य को 'अभ्युदय' से 'श्रेयस' की ओर अपने कदम बढ़ाने का आह्वान, साथ ही संस्कृति एवं राष्ट्र के प्रश्न के समाधान की खोज भी यहाँ दृष्टिगत होती है।

पृ. 98; रु. 165.00

बाजी राउत

संपादन : **कृष्णचंद्र आइच**

भाषांतर : **अजित प्रसाद महापात्र**

प्रस्तुत पुस्तक में ओड़िशा के वीर संग्रामी बालक बाजी राउत को केंद्र में रखकर लिखे गए रोचक आलेख निहित हैं। 'कितनी बातें, कितनी पीड़ाएँ' शीर्षक आलेख में वीर बालक बाजी राउत द्वारा छुटपन में ही देश के लिए सर्वोच्च बलिदान दिए जाने की मर्मांतक गाथा है। दूसरे आलेख 'ढेंकानाल का ऐतिहय और संस्कृति' में पद्मश्री पं. अंतर्यामी मिश्र द्वारा ढेंकानाल के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। कुल मिलाकर पुस्तक में चार आलेख हैं।

पृ. 30; रु. 80.00

ओकुहेपा

जितेंद्र कुमार सोनी

प्रस्तुत पुस्तक लेखक द्वारा देशभर में की गई बहुल यात्राओं का एक ऐसा दस्तावेज है, जिसमें यात्रा स्थलों का इतिहास, भूगोल, संस्कृति, कला, पर्यावरण, रीति-रिवाज आदि अनेक पक्षों-आयामों के झरोखे खुलते हैं। यात्राओं में जहाँ भारत के सुदूर दक्षिण का अंडमान-निकोबार शामिल है, वहीं सुदूर पूर्व के अरुणाचल की निरभ्र प्रकृति के दर्शन भी होते हैं। सुदूर पश्चिम के गुजरात का नया-नवेला पर्यटन स्थल 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' भी यात्राओं की जद में है तो उत्तर में भारत-चीन सीमा के अंतिम गाँव की झलक भी हम देखते हैं।

पृ. 90; रु. 205.00

चार धाम, बारह ज्योतिर्लिंग यात्रा

शिवजीत सिंह राघव

प्रस्तुत पुस्तक में विगत चार दशकों से दिव्यांगता से अभिशप्त लेखक द्वारा लिखित यात्रा-वृत्तांत प्रेरणादायी और मन को मजबूती प्रदान करने वाला है। यह यात्रा-वृत्तांत असंख्य लोगों के लिए अनुकरणीय है। इन यात्राओं में चारों धामों एवं बारहों ज्योतिर्लिंगों की सफल यात्राओं के अलावा हरिद्वार, मथुरा, अजंता, एलोरा, खाटू श्याम, सालासर बाला जी तथा नेपाल स्थित पशुपतिनाथ तक की यात्राओं की रोचक दास्तानें हैं।

पृ. 134; रु. 230.00

महात्मा हंसराज

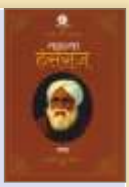

रमा

प्रस्तुत पुस्तक में महात्मा हंसराज के जीवन एवं उनके द्वारा राष्ट्रहित में किये गए कार्यों को बहुत ही रोचक ढंग से बताया गया है। पुस्तक में आर्य समाज की विकास यात्रा, स्वतंत्रता आंदोलन में आर्य समाज की भूमिका, आर्य समाज द्वारा स्थापित शिक्षा संस्थाओं का विवेचन भी किया गया है। आर्य समाज और महात्मा हंसराज के संबंध को विश्लेषित करते हुए महात्मा हंसराज के जीवन में घटित घटनाओं, उनके प्रवचनों और भाषणों को भी सरल भाषा में व्याख्यायित किया गया है।

पृ. 148; रु. 215.00

nbt.india
एक सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 • **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in